मोहन-विनोद

रचयिता

हिज़ हाइनेस राजा सर रामसिंह जी 'मोहन'
के० सी० आई० ई०
सीतामऊ-नरेश

सम्पादक

पं० कृष्णबिहारी मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण } १९३५ { संवत् १९९१ वि०

मोहन-विनोद

विषय-सूची

भूमिका

मोहन-विनोद

१—मङ्गल-विनोद

२—अन्योक्ति-विनोद

३—शृङ्गार-विनोद

४—विविध-विनोद

पं० कृष्णविहारी मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

भूमिका

१—राजा रामसिंह और सीतामऊ

पूर्व-परिचय

कान्यकुब्ज-देश के विख्यात नरेश भानुकुल-कमल-दिवाकर महाराजा जयचन्द को कौन नहीं जानता है। अपने समय में इन राठौर-वंशावतंस महाराजा जयचन्द जी का पूर्ण आतंक था; उत्तरी भारत में इनकी कन्नौज-राजधानी विश्वविख्यात थी। समय की गति के अनुसार राठौरों ने कन्नौज-देश को छोड़ दिया और राजस्थान में अपनी विजय-वैजयंती फहराई। महाराजा जयचन्द के प्रपौत्र का नाम अस्थान जी था। मारवाड़ में उन्होंने ही पहले-पहल राठौर राज्य की जड़ जमाई। अस्थान जी की दसवीं पीढ़ी में, प्रसिद्ध जोधपुर राजधानी को वसानेवाले, राव जोधा जी हुए। राव जोधा जी की सातवीं पीढ़ी में, मोटा राजा नाम से प्रसिद्ध, उदय-सिंह जी हुए। मोटा राजा जी के सत्रह पुत्र थे। इनके नवें पुत्र का

नाम दलपतिसिंह जी था। बड़ाबेड़ा, खेरवा और पिसागुंज, यह तीन परगने इनके अधिकार में थे। दलपतिसिंह जी के पाँच पुत्र थे; जिनमें सबसे बड़े महेशदास जी प्रबल पराक्रमी और सच्चे शूर वीर थे। बादशाह शाहजहाँ के ये विशेषरूप से कृपापात्र थे। पिता के समान ही महेशदास जी के भी सौभाग्य से पाँच पुत्र-रत्न थे। इन सब में ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह जी वास्तव में कुल-रत्न थे। ये बड़े ही साहसी, निर्भीक और पराक्रमी योद्धा थे। दिल्ली में एक बार इन्होंने एक मदोन्मत्त शाही हाथी को प्रचण्ड प्रहार से भयभीत करके भागने के लिये विवश किया था। संयोग से उस समय बादशाह महल के ऊपर विराजमान थे। अद्भुतकर्मा रतनसिंह जी के इस प्रचण्ड पराक्रम पर वे मुग्ध हो गए और नवयुवक राठौर-वीर रत्नसिंह जी को, पुरस्कार में, शाही सेना-विभाग में उच्च पद प्रदान किया। फिर तो इन्होंने ख़ुरासान और क़ंधार की लड़ाइयों में वह पराक्रम दिखलाया कि सर्वत्र इनकी प्रशंसा होने लगी। भाग्य ने ज़ोर मारा और बादशाह ने तिरपन लाख वार्षिक आय की एक विशाल जागीर इनको मालवा प्रान्त में प्रदान की। इस प्रकार रतनसिंह जी का मालवा प्रान्त से स्थायी सम्बन्ध स्थापित हुआ। कुछ समय के वाद रतनसिंह जी ने अपने नाम पर 'रतलाम' नगर बसाया और उसे राजधानी बना कर वहीं से राज्य-शासन का सञ्चालन करने लगे। 'रत्नललाम' (रतलाम) रतनसिंह जी की कीर्ति को आज भी मालवा प्रान्त में प्रगट कर रहा है। ये घटनाएँ संवत् १७०८ और १७११ के बीच की हैं। महाराजा रतनसिंह जी के बारह पुत्र थे। इनके सबसे बड़े पुत्र का नाम रामसिंह जी था। रामसिंह जी के ही वंशज 'सीतामऊ-राज्य' के अधिपति हैं। महाराजा रतनसिंह

जी के कनिष्ठ पुत्र रायसिंह जी थे। रायसिंह जी को सं० १७०८ में आगरकानड परगना मिला था। सं० १८०७ में रायसिंह जी के वंशज नाहरसिंह जी काछी-बड़ौदे में जाकर रहे। इनकी पाँचवीं पीढ़ी में महाराजा दलेलसिंह जी हुए। काछी-बड़ौदे के महाराज भगवंत-सिंह के कोई पुत्र न था। जब उनका स्वर्गवास हो गया तब उनकी रानी ने दलेलसिंह जी को गोद लिया। इस प्रकार महाराज दलेल-सिंह जी काछी-बड़ौदे की गद्दी पर बिराजे। हिज़ हाइनेस महाराजा रामसिंह जी इन्हीं महाराज दलेलसिंह जी के पुत्र-रत्न हैं। हिज़ हाइनेस सीतामऊ राज्य की गद्दी पर कैसे बिराजे इसका विवरण इस प्रकार है :—

ऊपर बतला चुके हैं कि महाराजा रतनसिंह जी रतलाम राज-धानी से मालवा प्रान्त पर किस प्रकार हुकूमत करते थे। रत्नसिंह जी के पौत्र का नाम केशवदास जी था। केशवदास जी के समय में एक दुखद दुर्घटना हुई। बादशाह औरंगज़ेब का एक अफ़सर मालवा प्रान्त में 'जज़िया' कर वसूल करने के लिये आया। अदूर-दर्शी लोगों ने इसका बध कर डाला। जब बादशाह को इसका समा-चार मिला तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ और केशवदास जी की सम्पूर्ण जागीर ज़ब्त कर ली एवं यह आज्ञा भी निकलवा दी कि केशवदास जी एक हज़ार दिन तक शाही दरबार में उपस्थित होने के अधिकार से वंचित किये गये। केशवदास जी वास्तव में निर्दोष थे, परन्तु इस समय वे कर ही क्या सकते थे। आख़िर दरवार में उपस्थित होकर इन्होंने अपनी निर्दोषिता पूर्ण रूप से प्रमाणित कर दी। बादशाह फिर प्रसन्न हुए और करीब सन् १६९५ ई० में

इनको और जागीर मिली। तीतरौद परगने में सीतामऊ ग्राम को इन्होंने अपनी राजधानी बनायी। बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल-राज्य में बड़ी गड़बड़ी रही। जब फ़र्रुख़सियर राज्य-सिंहासन पर बैठा, तो सन् १७१७ ई० के लगभग उसने केशवदास जी को आलौट का एक और परगना भी दिया।

महाराजा केशवदास जी के बाद गजसिंह जी और फ़तेहसिंह जी ने सीतामऊ के राज्यसिंहासन की शोभा बढ़ाई, परन्तु यह समय इस राज्य के लिये अच्छा नहीं रहा। इसी समय में नाहरगढ़ और आलौट के परगने इस राज्य से निकल गए और उन पर क्रम से ग्वालियर और देवास का प्रभुत्व हो गया। फ़तेहसिंह जी के बाद महाराजा राजसिंह जी गद्दी पर विराजे। इन्होंने बड़ी योग्यता से राज्य की बिगड़ी व्यवस्था को सुधारा और उसे समृद्धि के मार्ग पर लाये। प्रसिद्ध पिंडारी-युद्ध के बाद सन् १८२० ई० में सीतामऊ और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच में एक महत्त्व-पूर्ण संधि हुई। इसके अनुसार सीतामऊ एक स्वतंत्र देशी राज्य मान लिया गया और वहाँ के नरेश की ग्यारह तोप की सलामी का अधिकार स्वीकार किया गया। महाराजा राजसिंह जी के राज्यकाल में ही उत्तरी भारत में लोमहर्षक सिपाही-विद्रोह की आग भड़क उठी। सीतामऊ-नरेश ने इस अवसर पर ब्रिटिश सरकार की पूर्ण सहायता की। सरकार ने भी कृतज्ञता-स्वरूप महाराज को प्रायः दो सहस्र की बहुमूल्य ख़िलअ़त भेंट की। राजा राजसिंह जी के अभयसिंह जी और रत्नसिंह जी नामक दो राजकुमार थे। दुर्भाग्य से महाराज के जीवन-काल में ही इन दोनों राजकुमारों का स्वर्गवास हो गया। कुमार

रतनसिंह जी बड़े ही पराक्रमी, गुणी, राजनीति-कुशल और मेधावी पुरुष थे। राजकुमार जी कुशल कवि और गंभीर कलावेत्ता भी थे। वह 'नटनागर' नाम से बड़ी ही रसीली कविता करते थे। इनका विशेष परिचय "नटनागर-विनोद-ग्रंथ" के भूमिका-भाग में मिलेगा। महाराजा राजसिंह जी के बाद कुमार रत्नसिंह जी के पुत्र भवानीसिंह जी राजगद्दी पर बिराजे। इनके राजत्वकाल में ब्रिटिश-भारत से राज्य में आनेवाले नमक पर से कर उठा लिया गया और राज्य की इस आय की क्षति-पूर्ति के लिये ब्रिटिश-सरकार ने धन की एक निर्दिष्ट संख्या सालाना मुआविज़े के रूप में देना स्वीकार किया। महाराजा भवानीसिंह जी अपुत्र थे और जब सन् १८८५ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया तब चीकलेवाले तख़्तसिंह जी के बड़े पुत्र बहादुरसिंह जी राजगद्दी पर बिराजे। ये महाराजा भवानीसिंह जी के दत्तक पुत्र थे और महाराजा फ़तेहसिंह जी के छोटे पुत्र नाहरसिंह जी की शाखा में से थे। दुर्भाग्य से बहादुरसिंह जी के भी कोई पुत्र नहीं हुआ। अतएव जब सन् १८९९ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ तो इनके भाई शार्दूलसिंह जी राजगद्दी पर बिराजे। परंतु राज्यारोहण के तेरह महीने बाद ही सन् १९०० ई० में इनका भी देहांत हो गया, इनके भी कोई पुत्र न था। ऐसी दशा में भारत-सरकार ने ख़ूब छानबीन करके काछी-बड़ौदा के श्री दलेलसिंह जी के द्वितीय पुत्र श्री महाराजा रामसिंह जी को उत्तराधिकारी स्वीकृत किया।

हिज़ हाइनेस राजा रामसिंह जी के पिता श्री दलेलसिंह जी बड़े ही धर्मनिष्ठ और सत्यवादी क्षत्रिय थे। ये भगवान सूर्यनारायण

जी के विशेष उपासक थे। इनके चार विवाह हुए थे। चौथा विवाह संवत् १९३२ में "पुरावत" शाखावाले सिसौदिया वंश में हुआ। इनके श्वसुर ठाकुर हम्मीरसिंह जी प्रतापगढ़ के अन्तर्गत कुलथान-स्थान के निवासी थे। हिज हाइनेस राजा रामसिंह जी की माता यही चौथी रानी थीं।

राजा रामसिंह जी का जन्म, पौष बदी चतुर्थी, गुरुवार संवत् १९३६ तदनुसार ता० २ जनवरी सन् १८८० ई० को हुआ। इनकी जन्म कुण्डली में शुभ ग्रह केन्द्र में पड़े हैं। कुण्डली का चक्र इस प्रकार है :—

इष्ट घटी ५१।२६ रात्रौ
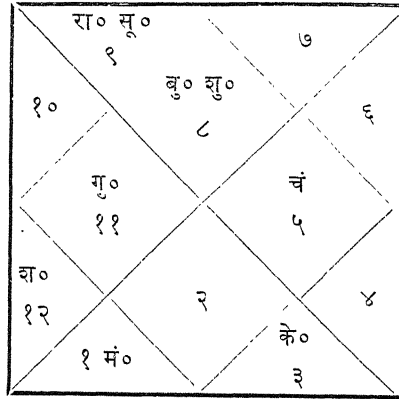
शिशु रामसिंह जी में भावी भाग्योदय के पूर्व लक्षण मौजूद थे। दया, प्रेम, सहानुभूति, सरलता, धर्मनिष्ठा, भक्ति और गुरु-जनों के प्रति पूज्यभाव इनमें उस समय भी पाये जाते थे जब ये निरे बालक थे। बालक रामसिंह जी जब सात वर्ष के हुए तब इनके शिक्षण का कार्य प्रारंभ हुआ। पण्डित जगन्नाथ पण्ड्या ने अक्षरारंभ कराया। दो वर्ष तक हिन्दी की पढ़ाई होने के बाद, श्री रामचन्द्र विनायक चापेकर ने इनको अंग्रेज़ी पढ़ाना प्रारम्भ किया। इनके बाद कई शिक्षक अंग्रेज़ी शिक्षा के लिये नियुक्त किये गये। इनकी बुद्धि तीव्र थी और जो कुछ इनको बतलाया जाता उसे ये बहुत जल्द सीख लेते थे। सन् १८९२ ई० में ये इन्दौर के डेली-कॉलेज में भर्ती करा दिये गये। यहाँ इन्होंने अंग्रेज़ी का अच्छा अध्ययन किया और राजकुमारों के लिये राज्य-व्यवस्था सम्बंधिनी जिस शिक्षा की आवश्यकता है वह भी प्राप्त कर ली। कॉलेज में व्यायाम की जो शिक्षा दी जाती है उसमें भी इन्हें अनुराग था। इनके सभी शिक्षक और विशेष कर प्रिंसिपल साहब इनसे संतुष्ट रहते थे। शिक्षक-मण्डल में इनकी स्मरण-शक्ति, अध्ययन-परिश्रम, कुशाग्र-बुद्धि की अच्छी सुख्याति थी। संवत् १९५१ में इनकी स्नेहमयी जननी का स्वर्गवास हो गया और संवत् १९५३ में इनको पितृ-वियोग का महान दुःख उठाना पड़ा।

पिता के स्वर्गवास के बाद भी ये कुछ साल तक कॉलेज में पढ़ते रहे। इस बीच में इन्होंने इन्दौर-रेसीडेंसी-ऑफ़िस तथा रेसीडेंसी-कोर्ट में भी जाना प्रारम्भ कर दिया और वहाँ का आवश्यक अनुभव भी प्राप्त किया।

उन दिनों सरदारपुर में मिस्टर बोझांकेट 'पोलिटिकल एजेंट' थे। कार्यवश इनकी और रामसिंह जी की भेंट हो गई। राजा रामसिंह जी महकमा माल का काम व्यावहारिक रूप से सीखना चाहते थे। उन दिनों अलवर और भरतपुर में सेटलमेंट और पैमाइश का काम हो रहा था। मिस्टर बोझांकेट ने इनको परिचय-पत्र के साथ भरतपुर के पोलिटिकल एजेन्ट के पास भेजा। उन्होंने इनको मिस्टर ओडायर के पास जो उस समय अलवर और भरतपुर के सेटलमेंट ऑफ़िसर थे, भेजा और रामसिंह जी ने वायना तहसील में काम करना आरंभ किया। इनकी सूझ-बूझ परिश्रम और अध्यवसाय को देख कर सेटलमेंट-ऑफ़िसर मिस्टर ओडायर बहुत प्रसन्न हुए। यह वही मिस्टर ओडायर हैं जो बाद को पंजाब के गवरनर हुए थे। मिस्टर ओडायर ने मिस्टर बोझांकेट के पास इनके काम की संतोषदायक रिपोर्ट भेजी। मिस्टर बोझांकेट चाहते थे कि रामसिंह जी को कोई प्रतिष्ठित पद प्राप्त हो। इसी बीच में भारत-सरकार के सामने सीतामऊ-राज्य की रिक्त गद्दी पर मूल पुरुष महा-राजा रतनसिंह जी के वंशजों में से किसी योग्य पुरुष को आसीन करने का प्रश्न आया। रामसिंह जी ने भी उक्त स्थान के लिए अपना दावा पेश किया। सरकार ने निष्पक्षपात भाव से, पूर्ण अनुसंधान करके, उदारतापूर्वक रामसिंह जी के अनुकूल निर्णय किया। इस प्रकार रामसिंह जी सीतामऊ-राज्य के राजा हो गये।

"सीतामऊ" मध्य भारत में एक स्वतंत्र देशी राज्य है। इसके उत्तर और पश्चिम में इन्दौर तथा ग्वालियर, दक्षिण में जावरा

और देवास एवं पूर्व में झालावाड़ राज्य स्थित है। सोलहवीं शताब्दी तक सीतामऊ मुग़ल बादशाहत के मालवा सूबे का एक अंग था। मुग़ल बादशाहों द्वारा यह राज्य वर्तमान राजा साहब के पूर्वजों के हाथ कैसे आया इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उपर्युक्त वर्णन से यह प्रगट है कि जोधपुर के राठौर राजवंश की एक शाखा में से ही इस राज-घराने का भी वंशविस्तार हुआ है। सीतामऊ के नरेश "हिज़ हाइनेस" कहलाते हैं। इसी सीतामऊ की राजगद्दी पर २१ नवंबर सन् १९०० ई० को महाराजा रामसिंह जी समारोह के साथ बैठे। सीतामऊ-राज्य में आनंद छा गया, प्रजा ने हर्ष मनाया, भारत-सरकार की ओर से पोलिटिकल एजेंट साहब पधारे और विधिवत् ब्रिटिश सरकार की ओर से राजा रामसिंह जी को सीतामऊ का अधिपति स्वीकार किया।

विधिवत् सीतामऊ के राजा हो चुकने के बाद हिज़ हाइनेस ने अविलम्ब राज्य की यथार्थ दशा का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन किया। उन्होंने प्रचलित राज्य-व्यवस्था को अस्त-व्यस्त दशा में पाया। राजकोष तो खाली था ही, रियासत ऋणजाल में पूर्ण-रूपेण ग्रस्त थी। इन्होंने अपने जीवन को नितांत सरल बनाया और मितव्ययिता का पूर्ण सत्कार किया। व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद में होने वाले अपव्यय पर इन्होंने कठोर नियंत्रण किया। शीघ्र ही ऋण का परिशोध हो गया।

हिज़ हाइनेस के राजकाल में सीतामऊ का राजवंश निम्न-

लिखित प्रतिष्ठित राजघरानों मे वैवाहिक सूत्र में सम्बद्ध हुआ अर्थात्——लनावाड़ा, राघौगढ, कोठारिया, सरगुजा (सी० पी०) प्रतापगढ़ (राजपूताना)। राजा साहब के इस समय तीन सुयोग्य राजकुमार हैं। युवराज श्री रघुबीरसिंह जी एम० ए०, एल्-एल्० बी० हैं, ये हिन्दी के उदीयमान लेखक हैं। इतिहास इनका प्रिय विषय है। इनका "पूर्व-मध्यकालीन-भारत" नामक ग्रंथ हिन्दी-संसार में लोकप्रिय हुआ है। इन्होंने गद्य में और भी कई ग्रंथ लिखे हैं। इनके गद्य में कविता का रसास्वादन होता है। अन्य दो राजकुमारों में से एक, बी० ए० की परीक्षा में बैठ चुके हैं और तीसरे एल्-एल्० बी० एवं एम० ए० (प्रीवियस) में। तीनों ही राजकुमार सच्चरित्र, सौम्य, सुशील एवं विनम्र हैं। इस प्रकार हिज़ हाइनेस का पारिवारिक जीवन शुद्ध, शांत और सुखमय है।

राजा रामसिंह जी के राजकाल में राज्य-व्यवस्था में बहुत सुधार हुआ। हिज़ हाइनेस ने फिर से सेटलमेंट किया। कृषकों की रैयतवारी प्रथा के अनुसार पट्टे दिये और उनके मौरूसी अधिकार स्वीकार किये एवं उनको ज़मीन आबाद करने के लिये प्रोत्साहित किया। राजा साहब ने राज्य भर में पुराने कुओं, नालों एवं बावड़ियों का जीर्णोद्धार कराया और नये कुएँ भी बनवाये तथैव आबपाशी के अनेक नये साधन भी सम्पन्न किए। इन्होंने उजड़े गाँवों को फिर से बसाया और पड़ती ज़मीन को कृषि के उपयोग में लिया। इन्होंने जंगलात का महकमा भी क़ायम किया और स्थान-स्थान पर वृक्षों की रक्षा की और विशेष करके सीतामऊ में आम्र-वृक्ष लगाये। एक्साइज़ का महकमा

भी इन्हीं के समय में स्थापित हुआ। दीवानी एवं फौजदारी अदालतों में योग्य और सुपठित लोगों की नियुक्ति की और इन्होंने राज्य भर के लिए भारत-सरकार से हाईकोर्ट के पूर्ण अधिकार प्राप्त किये। स्थानीय शासन-व्यवस्था के सिद्धांत प्रजा समझे और उस काम को चलाने में दरबार का हाथ बँटावे, इस विचार से हिज़ हाइनेस ने आधुनिक ढंग की म्युनिसिपेल्टिी का भी प्रबंध किया है और उसमें ग़ैर सरकारी सदस्यों का प्रभाव पूर्ण रूप से रहने दिया है। महाजनों और साहूकारों के क्रूर आतंक से बचाने के लिये राज्य के किसानों के लिए एक एग्रीकल्चर बैंक राजा साहब ने खुलवाया है। इसी प्रकार व्यापारियों के सुभीते के लिये व्यापारी बैंक भी खोला गया है। ग्रेनफण्ड की स्थापना भी प्रजा की भलाई के लिये की गई है।

राजा रामसिंह जी का व्यक्तिगत जीवन अत्यंत उज्ज्वल है। उनके चरित्र में दृढ़ता है। जिस काम को वे उठाते हैं पूरा करके छोड़ते हैं। प्रत्येक काम का समय निर्दिष्ट है और निर्दिष्ट समय पर ही काम होता है। समाज की अनुचित रूढ़ियों और कुरीतियों को दूर करने का आप सदैव प्रयत्न करते रहते हैं। राजपूत जाति पर आपका अपार प्रेम है और उसकी उन्नति के लिये सदैव कटिवद्ध रहते हैं। अजमेर की भूतपूर्व क्षत्रिय महासभा में आपका सहयोग था। उसी महासभा में वैवाहिक कुरीतियाँ दूर करने का एक प्रस्ताव पास हुआ। अन्य बातों के साथ उसमें यह भी निश्चय था कि "टीकाकेसर" की रस्म में लड़कीवाले से जो बहुत-सा नक़द रुपया लिया जाता है वह न लिया जाय। राजा

साहब इस प्रस्ताव के समर्थक थे। इसके बाद युवराज के विवाह का सुअवसर आया। लोग टीके में पर्याप्त धन देने का लोभ उपस्थित करने लगे परन्तु राजा साहब अपने निश्चय पर दृढ़ रहे।

राज्य के काम में पूर्ण मनोयोग देते रहने पर भी राजा साहब संगीत, काव्य और आखेट के लिये भी समय निकाल लेते हैं। आखेट से आप को प्रेम है, परन्तु सबसे अधिक आपका ध्यान अपनी आध्यात्मिक उन्नति का है। देवार्चन, धर्मग्रंथों का परिशीलन और मनन तथा भगवद्भजन में आपको अपूर्व आनंद मिलता है। राजा साहब के तीन विवाह हुए हैं। दो रानियों का स्वर्गवास हो चुका है। दूसरी सौभाग्यवती महारानी रानावत जी साहिबा के पाँच संतानें थीं। अर्थात्—तीन राजकुमार और दो राजकुमारियाँ। ईश्वर के अनुग्रह से यह पाँचों ही सन्तानें मौजूद हैं और अपने सच्चरित्र से महारानी जी की आत्मा को स्वर्ग में भी शांति और आनंद प्रदान कर रही हैं। वर्तमान महारानी सौभाग्यवती श्री भटयानी जी साहिबा हैं। इनके शील, स्वभाव, पातिव्रतधर्म और पुत्र-प्रेम आदि सद्गुणों पर सारा राजपरिवार मुग्ध है।

तत्वज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान, वेदांत, न्याय, ज्योतिष एवं काव्य-शास्त्र पर राजा साहब ने बहुत परिश्रम किया है और इनमें उनकी अच्छी गति है। फ़ारसी, और उर्दू आप जानते हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य का आपने अच्छा अध्ययन किया है। संगीत में भी उनकी विशेष रुचि है और उस कला के वे मर्मज्ञ हैं। यद्यपि राजा साहब के ज्ञान की परिधि इतनी विस्तृत और विशाल है, फिर

भी उनकी ज्ञान-पिपासा कभी बुझती नहीं और वे सदैव ज्ञानोपार्जन में संलग्न रहते हैं।

राजा रामसिंह जी विद्याप्रेमी नरेश हैं। उनके इस विद्या-प्रेम का यह परिणाम है कि तीनों राजकुमारों ने ऐसी उच्च शिक्षा प्राप्त की है, परन्तु इनका विद्याप्रेम अपने परिवार तक ही परिमित नहीं है। अपनी प्रजा को पुत्रवत् मानते हुए उसको भी विद्योपार्जन के लिये प्रोत्साहन देना राजा साहब अपना पवित्र कर्तव्य समझते हैं। एतदर्थ उन्होंने राज्य में विलेज-स्कूल्स (ग्राम पाठशालाएँ) स्थापित किये हैं। बालकों के समान बालिकाओं की शिक्षा भी दरबार की दृष्टि में परमावश्यक है। और इसके लिये प्रचुर अर्थ व्यय करके एक कन्या पाठशाला की भी स्थापना की गई है। इसमें पढ़ने वाली कन्याओं की संख्या संतोषदायिनी है। अंग्रेज़ी शिक्षा के लिये सीतामऊ में एक हाई स्कूल स्थापित है। इस स्कूल की पढ़ाई इतनी अच्छी होती है कि कई साल से इसके विद्यार्थी शत-प्रति-शत के हिसाब से परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं। डाक्टर किंग भूतपूर्व "इंसपेक्टर-ऑफ-स्कूल्स इन सेन्ट्रल-इंडिया" ने अपनी रिपोर्ट में इसको एक माडल-स्कूल (आदर्श-स्कूल) स्वीकार किया है।

सीतामऊ राज्य का आंतरिक सुप्रबन्ध करते हुए उसके बाहरी सौन्दर्य-सम्वर्धन की बात राजा साहब कभी भी नहीं भूले। इसके अतिरिक्त समय समय पर इन्होंने अनेक इमारतें बनवा कर राज्यश्री का शृंगार किया है।

राजा भवानीसिंह के शासनकाल के बाद सीतामऊ राज्य की परिस्थिति कुछ ऐसी अस्त-व्यस्त और संकटपूर्ण रही कि न तो अन्य देशी राज्यों के साथ ही इसके उचित सम्बन्ध रहे और न अनुरूप अधिकारों की समुचित रक्षा हुई। राजा रामसिंह जी ने इस ओर भी दृष्टिपात किया। जोधपुर, बीकानेर एवं किशनगढ़ के महाराजाओं से राजा रामसिंह जी ने नूतन सम्बन्ध स्थापित किया। इन नरेशों की परस्पर भेंट हुई और इनमें रजवाड़ों में प्रचलित समुचित व्यवहार का प्रारम्भ हुआ। इससे सीतामऊ के नैतिक गौरव की वृद्धि हुई। सीतामऊ और सैलाना के नरेश दोनों ही जोधपुर वंश की एक ही शाखा के अन्तर्गत हैं, भेद इतना ही है कि सीतामऊ राजवंश बड़ी प्रशाखा में है और सैलाना छोटी में से। यह होते हुए भी ब्रिटिश सरकार के दरबार में सैलाना नरेश इनके ऊपर की बैठक पर बैठने लग गये थे। इस बारे में कार्रवाई पूर्व नरेश के समय में ही शुरू हो गई थी। इसी विषय में श्रीमानों ने भी प्रयत्न किया और फल-स्वरूप सीतामऊ को उचित स्थान प्राप्त हो गया।

एचीसन ट्रीटीज़ में ग़लत इतिहास छप गया था और उससे यह प्रतीत होता था कि सीतामऊ की शाखा रतलाम के छोटे भाइयों में से है। इस ग़लती को दुरुस्त करने के लिये इन्होंने मुग़ल बादशाह के शाही क़ागज़ात की अच्छी तरह छान बीन की और जब उनको अकाट्य और पर्याप्त प्रमाण मिल गये, तब इन्होंने उनको ब्रिटिश सरकार के सामने उपस्थित किया। उन

प्रमाणों को देख कर ब्रिटिश सरकार ने एचीसन ट्रीटीज़ में संतोष-जनक दुरुस्ती कर दी ।

पहले इस दरबार के पास वाइसराय के ख़रीते आते थे और यहाँ से वाइसराय के पास जाते थे। ख़रीतों का यह सीधा आवागमन बन्द हो गया था। राजा रामसिंह जी ने इसका परिशोध किया। अब तो पूर्ववत् ख़रीतों का सीधा आना-जाना जारी है।

सन् १९११ के दिल्ली दरबार में राजा रामसिंह जी को के० सी० आई० ई० की उपाधि प्राप्त हुई। 'नरेन्द्र-मण्डल' की स्थापना के समय यह प्रश्न उठा था कि उसमें छोटी रियासतों की सदस्यता स्वीकार की जाय या नहीं। राजा साहब छोटी रियासतों के प्रवेश के समर्थक थे। इस संबंध में आपका परिश्रम सफल हुआ और नरेन्द्र-मण्डल में छोटी रियासतों की सदस्यता स्वीकार की गई ।

जोधपुर राज्य के प्रतिष्ठित राज-कवि कविराजा-मुरारिदान जी ने राजा रामसिंह जी के विषय में जो छन्द बनाया है, वह इनके चरित्र की स्तुति बड़े ही मार्मिक ढंग से करता है। छन्द इस प्रकार है :—

कृपण, कपूत, परदार-पर-द्रव्य-हारी,
जाये जेहि ठाम तेहि कहाँ लौं गनाऊँ मैं।
धर्म की न भाखै गाथ चलत अनीति साथ,
सीतामऊ नाथ! दुख कौन को सुनाऊँ मैं॥

क्षत्रिन उतार दसा आई होन हार बस,
भनत मुरार देखि देखि पछिताऊँ मैं।
जब सुधि तेरी ह्वै अलेख-दोष राम राजा,
तब सब कलि को कलेस भूलि जाऊँ मैं।।

२—राजा रामसिंह और मोहन-विनोद

१—कवि का साहित्यिक वातावरण

यदि यह बात पहले से मालूम हो जाय कि कवि का साहित्यिक जीवन किस वातावरण में पनपा है तो उसकी कविता समझने में विशेष सुभीता होता है। जैसे देश के राजनैतिक जीवन के विकास का इतिहास भिन्न-भिन्न राजनैतिक नेताओं की राजनैतिक प्रवृत्ति का परिचय कराता है, वैसे ही साहित्यिक जीवन का इतिहास साहित्यकारों की साहित्यरुचि का स्पष्टीकरण करता है। जो बात किसी भाषा विशेष के साहित्यिक इतिहास पर लागू है वही उक्त भाषा के किसी साहित्यकार विशेष के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। भिन्न-भिन्न समयों के भिन्न-भिन्न साहित्यकारों की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ साहित्य के इतिहास की मनोरम शृंखलाएँ हैं। जब तक किसी भी शृंखला के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अधूरा रहेगा, तब तक इतिहास भी पूरा न बन सकेगा। उधर शृंखला का पूरा ज्ञान तभी हो सकेगा जब उसका इतिहास भी हमें पूरे

तौर से अवगत हो। साहित्यकार के शृंखलारूपी साहित्यिक जीवन-विकास का इतिहास जानना अत्यन्त आवश्यक है, यह बात कदाचित् अब पाठकों की समझ में आ गई होगी। इसीलिये जिस वातावरण में साहित्यिक जीवन पनपा है, उसका ज्ञान साहित्यकार से सच्ची पहिचान कराने में सहायक होता है। 'मोहन-विनोद' ग्रंथ के रचयिता राजा रामसिंह की कृतियों को भी हम संतोषदायक रीति से तभी समझ सकेंगे जब हमें यह मालूम रहे कि साहित्यकार 'मोहन' अपने साहित्यिक जीवन के विकास में कैसी-कैसी साहित्यिक परिस्थितियों में रहे। किस साहित्यिक वातावरण में उन्होंने साँस ली, किन साहित्यिक पुरुषों का उनका समागम रहा, किन साहित्यिक ग्रंथों के अध्ययन का उनको अवसर मिला और उनकी स्वाभाविक साहित्यिक प्रवृत्ति का ऐसे संसर्ग से कहाँ तक उत्थान अथवा पतन हुआ। इसीलिये राजा साहब की कविता के विषय में कुछ विस्तार के साथ लिखने के पूर्व हम यहाँ पर संक्षेप में उस साहित्यिक वातावरण का दिग्दर्शन करा देना चाहते हैं जिसमें 'मोहन' कवि ने विहार किया है।

बालक रामसिंह का बाल्यकाल अपने धर्मात्मा पिता के साथ बीता। भक्त पिता सदैव ईश्वर-भक्ति में मग्न रहते थे। कभी रामायण का, कभी अन्य पुराणों का पारायण होता और कभी भागवत का स्वागत। कभी स्तोत्रों का पाठ होता तो कभी ईश्वर-भजन की आनंद-मंदाकिनी बहती। कविता में भी भावावेश है और भक्ति में भी। भावना की तीव्रता दोनों में समान है। भक्ति में कविता के नैसर्गिक गुण स्वतः वर्तमान हैं। उसी प्रकार कवि भी

जगदीश्वर की ईपत् प्रेरणा से महान भक्त हो सकता है। जो हो कवित्वमय भक्ति-उदधि में सुकुमार-मति बालक रामसिंह को विमल-विमल कर नहाने का पूर्ण अवसर मिला। इनकी कोमल मति में भक्ति के संस्कार सदा के लिए अंकित हो गए और साथ ही साथ कविता की भावना ने भी गुप्त रूप से इनके मन में अपने सम्मान का सिक्का बैठा लिया।

पिता के पवित्र भक्ति परिवेष्टित वातावरण से अब उन्हें कुछ दूर रहना पड़ा। विद्याध्ययन के लिये इन्दौर का डेली-कालेज अब इनका कर्तव्य-क्षेत्र बना। यहाँ बुद्धिविकास का वितान तना था। संभव है कि भक्तिभावों के झकोरे यहाँ भी कभी-कभी आते रहते हों। परन्तु पिता के निकट वाले निरंतर भक्ति के पावन-पवन का सञ्चालन यहाँ न था। ऐसी परिस्थिति में यदि भावावेश पर कवित्वावेश का प्राधान्य हो गया हो तो आश्चर्य ही क्या है। हमारा विचार है कि कालेज का वातावरण भक्ति की अपेक्षा कविता प्रवृत्ति की प्रेरणा में अधिक सहायक रहा होगा और पिता के समीप में जो कविता इनके पास अज्ञात यौवना के रूप में रही होगी वह यहाँ ज्ञात यौवना का रूप पा गई हो तो क्या आश्चर्य है। कुछ भी हो विकास का रूप नितांत स्पष्ट है।

एक सीढ़ी और ऊपर चढ़िये। सीतामऊ के राजकुमार रतनसिंह जी को 'नटनागर' रूप में कविता सुन्दरी के साथ केलि करते हुए देखिए। कवि और कला के पारखी 'नटनागर' जी सीतामऊ को साहित्यिक वातावरण में व्याप्त कर देते हैं। उनके

स्वर्गवास के बाद यद्यपि इस वातावरण की सघनता कम हो जाती है, परन्तु कई पीढ़ियों तक उसका प्रभाव बराबर बना रहता है। वह बिलकुल मिटने नहीं पाता है। जीवन सर्वथा निष्प्राण नहीं होता है कि इतने ही में राजा रामसिंह जी सीतामऊ की गद्दी पर आ विराजते हैं। रामसिंह जी के हृदय में भक्ति-भावना के साथ कविता का जो अंकुर उगा था और कालेज के बुद्धि-वितान के नीचे जिसने वृद्धिलाभ किया था वही अब सीतामऊ के साहित्य-सलिल को पाकर लहलहा उठता है। क्या साहित्यिक विकास के समझाने का यह प्रयास कष्ट कल्पना है? जिस समय राजा रामसिंह सीतामऊ पधारे उस समय राजधानी के साहित्य-मन्दिर में नट-नागर-स्नेह से सिंचित शेरादान जी और गिरधारी जी जैसे सुकवि वर्तमान थे, जिनमें से सौभाग्य से गिरधारी जी अब भी मौजूद हैं, यद्यपि अब वृद्ध अधिक हैं। 'नटनागर' को ही 'मोहन' के रूप में पाकर मुरझाई हुई साहित्य-लता एक बार फिर हरी भरी हो उठी।

विद्याप्रेमी राजा साहब ने अब संस्कृत काव्य का विधिवत् अध्ययन आरम्भ किया। सन् १९०५ और सन् १९०८ के बीच में इन्होंने क्रम से शाकुन्तल, कादम्बरी, नैषध, रघुवंश और कुमार-सम्भव को ध्यान पूर्वक पढ़ा। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा के पुराने कवियों के अनेक काव्य-ग्रन्थों की भी सैर की। हृदय में स्वाभाविक साहित्य-स्फूर्ति, यौवनकाल जो स्वयं काव्यमय है, सीतामऊ की राजगद्दी जिसके साथ नटनागर जी ने कविता-प्रवृत्ति की परिपाटी बाँध रक्खी थी, एवं देवभाषा के सरस काव्यों का परिशीलन,

इन सब ने मिलकर रामसिह जी को 'मोहन' कवि के रूप में प्रगट होने को विवश किया।

यद्यपि छंद बनाने का काम इन्होंने १९०५ ई० के पहले ही प्रारंभ कर दिया था तथापि, इनके अधिकांश छंद १९०५ और १९१० ई० के बीच में बने। पुराने ब्रजभाषा के कवियों के अनेक शृंगारमय-ग्रंथों का रसास्वादन करके इन्होंने भी पुरानी परिपाटी के अनुसार 'जगत-विनोद' और 'रसराज' की शैली का नायिका-भेद का ग्रंथ बनाया। उधर लगभग इसी समय 'रामविलास' नामक एक भक्ति-पक्ष की पुस्तक भी तैयार हुई। 'रामविलास' में ईश्वर की स्तुति तथा भगवान के प्रति निवेदन आदि विषय हैं। इस ग्रंथ के द्वारा कवि ने एक प्रकार से अपनी कवित्व-शक्ति का अन्दाज़ा लगाया है। इसमें उक्ति की विलक्षणता अथवा सूक्ति के चमत्कार तथाच भाषा के सौंदर्य पर ध्यान नहीं दिया गया है। उदीयमान कवि को अपनी प्रारंभिक रचनाओं में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनका आभास 'रामविलास' में भी मौजूद है। रामविलास ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। 'मोहनविलास' ग्रंथ की रचना कर चुकने के बाद, राजा साहब की इच्छा हुई कि संस्कृत भाषा में उपलब्ध उच्चकोटि के साहित्य-शास्त्र संबंधी ग्रंथों का अध्ययन किया जाय, अतएव उन्होंने काव्यप्रकाश, काव्यप्रदीप और रसगंगाधर का अध्ययन बहुत परिश्रम के साथ किया। इस अध्ययन के बाद राजा साहब ने एक बार अपने नायिकाभेद संबंधी ग्रंथ को फिर से पढ़ा। अब आप को जान पड़ा कि उक्त-ग्रंथ के छंदों में संशोधन और परिवर्तन की आवश्यकता है। तदनुसार

आपने संशोधन का कार्य उठाया और कुछ समय बाद उसे समाप्त किया।

राजा साहब कविता-रचना का काम राज-काज से बचे हुए समय में करते थे और वह भी——'स्वांतः सुखाय'। हिन्दी-साहित्य-संसार में 'मोहन' कवि की रचनाओं की धूम हो जाय, पत्र-पत्रिकाओं में इनकी भी कविताएँ छपने लगें, इसके लिये इन्होंने कभी आग्रह नहीं किया। साहित्य-शास्त्र के समान ही साइंस (भौतिक विज्ञान) पढ़ने में भी इनकी प्रवृत्ति पहले से ही थी। बहुत व्यय करके राजा साहब ने एक 'लिबोरेटरी' भी स्थापित की और उसमें वैज्ञानिक प्रयोगों का अभ्यास प्रारंभ किया। विज्ञान-अध्ययन का फल यह हुआ कि 'वायुविज्ञान' नामक पुस्तक राजा साहब ने हिन्दी-संसार को भेंट की। विज्ञान और साहित्य के अतिरिक्त ज्योतिषशास्त्र में भी प्रारंभ से ही आपको दिलचस्पी थी। शांकरभाष्य तथा स्पेंसर के तत्वज्ञान का भी राजा साहब ने पूर्ण अध्ययन किया है। कहना नहीं होगा कि राजा साहब के इन अनेक विषयों के ज्ञान का प्रगट अथवा प्रच्छन्न प्रतिबिम्ब इनकी अनेक कविताओं में मौजूद है।

बाल्यकाल की भक्ति-भावना इनके हृदय-पटल पर बराबर अंकित रही। कभी अन्य कामों में व्यस्त रहने के कारण उसका परिस्फुटन नहीं हुआ और कभी मन की स्वछन्द अवस्था में वह प्रकाश में आई। राजा साहब ने समय-समय पर देववाणी संस्कृत में भी कविता की है। प्रायः संस्कृत की सूक्तियों में राजा साहब की भक्ति-भावना का श्रोत बड़े वेग से उमड़ पड़ा है।

ईश्वर की सत्ता में राजा साहब को दृढ़ विश्वास है और संदिग्ध होने की कौन कहे, रेशनलिज़्म पर लिखे ग्रंथों का अध्ययन कर चुकने के बाद, राजा साहब का ईश्वर-संबंधी विश्वास दृढ़तर हो गया है। इधर ज्यों-ज्यों इनकी अवस्था बढ़ती जाती है त्यों-त्यों इनका अधिक समय ईश्वर-आराधना में लगता जाता है। ईश्वरप्राप्ति के साधनों में जप का बहुत बड़ा महत्त्व है। राजा साहब का जप पर बड़ा विश्वास है।

राजा साहब की हिन्दी-कविता का माध्यम साहित्यिक-ब्रज-भाषा है। ब्रजमण्डल से साक्षात् परिचय न होने के कारण एवं संस्कृत शब्दावली पर पूर्ण अधिकार रहने से आपकी साहित्यिक-ब्रजभाषा कभी-कभी कुछ विकारग्रस्त दिखलाई पड़ती है। फिर भी अधिकांश में आपकी भाषा में ब्रजभाषा का सौंदर्य बराबर झलकता रहता है। राजा साहब कविता में अनावश्यक अनुप्रास-प्रयोग, शब्दाडंबर का घटाटोप एवं अज्ञेय अस्पष्टता तथा व्यर्थ के पाण्डित्य प्रदर्शन को अच्छा नहीं समझते हैं। केवल आश्चर्य और अतिशयोक्ति के सहारे आपको कविता करना पसंद नहीं।

ऊपर जो विवरण दिया गया है, यद्यपि वह संक्षिप्त है, तथापि हमारा विश्वास है कि यदि पाठक उसको ध्यान में रखते हुए 'मोहन-विनोद' को पढ़ेंगे तो 'मोहनकवि' की कविता के संबंध में उठने वाली अनेक शंकाओं का समाधान आप ही आप हो जायगा। अब हम अपने विचारों के अनुसार पाठकों का परिचय मोहन कवि

की रचनाओं से करावेंगे। परन्तु इसके पूर्व हम 'मोहन-विनोद' ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय भी यहाँ पर दे देना आवश्यक समझते हैं।

२—ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत 'मोहन-विनोद' ग्रंथ में प्रायः चार सौ छन्द हैं। छंदों में जिन विषयों का प्रवेश है उनकी दृष्टि से विचार किया जाय तो सम्पूर्ण रचना का आधे से अधिक भाग श्रृंगाररस से परिपूर्ण है। श्रृंगाररस की रचनाएँ अधिकतर यौवनकाल की हैं और नायिका-भेद सम्बन्धी ग्रंथ से संकलित की गई हैं। ये दोहा, सोरठा, सवैया एवं घनाक्षरी वृत्तों में निबद्ध हैं। अधिकांश में इनका समावेश श्रृंगार-विनोद के अन्तर्गत हुआ है, परन्तु कुछ फुटकर रचनाएँ 'अन्योक्ति-विनोद' और 'विविध-विनोद' के अन्तर्गत भी आ गई हैं। सरसता की दृष्टि से यह भाग बहुत सुन्दर है। घनाक्षरी की अपेक्षा सवैया में और सवैया की अपेक्षा दोहा छंद में भावों की जगमगाहट का अच्छा चमत्कार है। श्रृंगार के बाद 'विविध-विनोद' में नाना प्रकार की स्फुट सूक्तियाँ हैं। अनेक सूक्तियों में ऋतुओं का वर्णन है, अनेक में उद्बोधन और उपदेश हैं। अनेक विषयों पर कवि के मन में समय-समय पर जिस स्फूर्ति का प्रादुर्भाव हुआ है उसीका विकास सूक्तियों में मौजूद है। सीतामऊ के पास ही लदूना गाँव है। वहाँ पर भी कभी राजपरिवार रहा है। गढ़ एवं राजमहल अब तक सुरक्षित अवस्था में मौजूद हैं। राजमहलों से सटा हुआ 'लवसागर' नाम का एक सरोवर है। इसका दृश्य बड़ा मनोहर है। राजा साहब ने भुजंगप्रयात छंदों में इसकी शोभा का भी वर्णन

किया है। यह भी 'विविध-विनोद' में दिया गया है। मन के प्रति संस्कृत में राजा साहब ने कई श्लोक बनाये हैं। ये बड़े सुन्दर हैं। इनका समावेश भी 'विविध-विनोद' में है। 'अन्योक्ति-विनोद' में अन्योक्तियों की अच्छी बहार है। हिन्दी में घासीराम, गुरुदत्त, दीनदयाल गिरि एवं श्रृङ्गारी कवियों की अन्योक्तियाँ अत्यन्त सरस हैं। हमें यह कहते हुए कुछ भी संकोच नहीं है कि राजा साहब की कई अन्योक्तियाँ पुराने कवियों की अन्योक्तियों से टक्कर लेती हैं। अन्योक्ति के सफल परिस्फुटन में राजा साहब की प्रतिभा का सुन्दर विकास हुआ है। इनकी अधिकांश चमत्कार-पूर्ण अन्योक्तियाँ दोहा छंदों में हैं। 'मंगल-विनोद' में देव-वंदना, आत्मनिवेदन और राजवंश-परिचय से सम्बन्ध रखने वाली रचनाएँ हैं। सम्पूर्ण "मोहन-विनोद" निम्नलिखित क्रम के अनुसार चार भागों में विभक्त है अर्थात्—१—मंगल-विनोद, २—अन्योक्ति-विनोद, ३—श्रृङ्गार-विनोद, ४—विविध-विनोद। ग्रंथ के इस संक्षिप्त परिचय के बाद अब हम कवि की भाषा एवं भाव आदि के विषय में कुछ लिखेंगे।

३—भाषा

कविता में भाव प्रधान है और भाषा गौण। भाव प्राण है और भाषा शरीर। जिस कविता में प्राण नहीं वह कविता ही क्या? प्राण हो तो भद्दा शरीर भी क्षम्य है परन्तु बिना प्राण का सुन्दर शरीर किस काम का? इसलिये भाषा कैसी भी हो पर यदि भाव अच्छा है तो सब ठीक है, परन्तु भाव के अभाव में केवल

अच्छी भाषा के सहारे कोई कवि-पदवी को प्राप्त नहीं कर सकता।

भारतेन्दु जी ने ठीक ही कहा है —

"बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय"

परन्तु अच्छी भाषा के साथ भाव खिल उठता है, उसकी दीप्ति दूनी हो जाती है। इसीलिये अच्छे कवि प्रायः अच्छी भाषा में अपने भाव प्रगट करने का प्रयत्न करते हैं। अच्छी भाषा वही है जो तुरन्त पाठक को भाव के अन्तस्तल तक पहुँचा दे। यह काम भाषा की स्वाभाविक सरलता से पूरा होता है। सरल भाषा में जब मधुरता आ जाती है तब भाषा की रमणीयता बहुत कुछ बढ़ जाती है। कवियों के भाव स्वाभाविक अलंकारों से सजकर ऐसी भाषा को खोजते रहते हैं, जो कृत्रिमता के बिना उन्हें स्नेह-पूर्वक अपने सुखकर अंक में स्थान दें। कवियों के स्वच्छन्द भाव छन्दों में विहार करते हैं। जो भाषा भावों की इस छंद प्रियता में घुल-मिल जाना पसन्द करती है, कविता के लिये वही सुन्दर भाषा है। ऐसी भाषा में भाव का परिस्फुटन थोड़े से शब्दों में हो जाता है। भारी वाक्यावली की आवश्यकता नहीं पड़ती। कविता की भाषा के लिये लोच अथवा लचकीलापन भी परमावश्यक है। कवि चाहता है कि उसकी भाषा मोम के समान हो, काँच के सदृश नहीं। बस जिस भाषा में ऐसे गुण हों वही कविता के लिये उपयुक्त भाषा है। ये गुण किसी भाषा विशेष की बपौती नहीं हैं। किसी भी भाषा के सफल काव्य में इन गुणों की प्राण-प्रतिष्ठा दिखलाई पड़ेगी। सौभाग्य से समर्थ कवियों के हाथों पड़कर साहित्यिक ब्रजभाषा

ने इन गुणों को बड़े भोलेपन के साथ अपनाया है। हिन्दी कविता के अनेक प्रेमी इसी कारण अब भी ब्रजभाषा के उपासक हैं। कदाचित यही कारण है कि राजा रामसिंह जी का प्रेम भी ब्रजभाषा पर दृढ़ है। वे कहते हैं :—

अब हिंदी नवयोबना, मोहति रसिक प्रवीन।
पै यह मो मन बावरो, ब्रजभाषा महँ लीन॥

राजा साहब ब्रजभाषा के प्रेमी हैं और इसीलिये उन्होंने अपने भावों को ब्रजभाषा के आकर्षक वस्त्रों द्वारा सजाया है। उनकी साहित्यिक ब्रजभाषा कैसी है, इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। भाषा-सौंदर्य के उपासक स्वयं अनुभव कर लें कि 'मोहन कवि' की भाषा कैसी मनोरम बन पड़ी है :—

१—नैन-विहीनो नेह है, यहै यथारथ बात।
ना तौ क्यों न चकोर को, बिधु को अंक लखात॥

२—विमल सरस रचना सुभग, रसिक-मधुप जहँ लीन।
काव्य-सुमन काको मन न, बरबस करत अधीन॥

३—कुंज-कुंज गुंजत मधुप, कूजत कोकिल-कीर।
सीतल-मंद-सुगंध-मय, बहत बसंत-समीर॥

४—जानति हरि की बाँसुरी, उर-छेदन की पीर।
फिरि तू मो उर छेदिबे, हा! क्यों होति अधीर॥

५—जग बिच तरुवर अधिकतर, फूलि प्रथम फल देत ।
गूलर तव गौरव यहै, बिन फूले फल देत ।।

६—तव मूरति की लटक नित, अटकि रही इन नैन ।
जेहि ढूँढ़न भटकति फिरौं, पटकि सीस दिन-रैन ।।

७—कर-लाघव बिधि नें लह्यो, रचिकै प्रथम निसेस ।
यातैं तव यह बदन-बिधु, बिधु तैं बन्यो बिसेस ।।

८—जोबन-राज के राज भये, मुख-दीपति और की और ही छाई ।

९—चूमत क्यों यों मलिंद अहो, अहिफेन-प्रसून को पंकज-धोखे ।

१०—कंज बिलोकि कै कंजमुखी सित-कंजमुखी छिन माँहि भई है ।

११—मनमोहन स्याम बिना सजनी, रजनी तरसावनी सावन की ।

१२—मोहन स्याम बिना सजनी, रजनीचर सो रजनीकर लागे ।

१३—मोहन चुरावै चख लज्जित ह्वै चंदमुखी,
आलिन-समाज बीच हेरि हलचल को ।

१४—तेरे रति-रूप मैं बिकानो मन मेरो यातैं,
दौरि-दौरि गिरै प्यारी तेरे दर-द्वार पै ।

१५—दारुन वियोग पाय मेरो प्रान-पंछी यह,
छोरि देह-पिंजर को बाहर निकसि है ।

१६–राधे तव प्रीतम को पेखि इक पत्नीव्रत,
साधुन की साधुता को गौरव गलतु हैं।

१७–गावो गन चातक ना मेघन सघन देखि,
पूरे रंग-ढंग लखि हियरा तरसि है।
कुहू-कुहू मुरवा पुकारौ जिन मोद मानि,
बरषा-उमंग यों हीं उर में झरसि है॥
बादर-चढ़ाई लखि दादुर दुकारौ काहि,
बारि-बूंदैं रंचक हू तन न परसि हैं।
भूलौ मति, भूलौ मति, धोखे की अवाजें सुनि,
घने घन गाजे तामैं बाजे ही बरसि हैं॥

४—भाव और शृङ्गाररस

ब्रजभाषा की पुरानी कविता में—और विशेष करके शृंगार-रस की कविता में—विविध प्रकार के भावों का बाहुल्य नहीं दिखलाई पड़ता है। वही कुछ चुने हुए भाव हैं। वही भाव भिन्न-भिन्न कवियों द्वारा बार बार दोहराए जाते हैं। इनमें से बहुतेरे तो ऐसे हैं जो नायिका-भेद के अन्तर्गत लक्षणों के उदाहरणों में "पेटेन्ट" के समान व्यवहृत होते हैं। जिन लोगों को केवल भावों की भूख है वे उसी वस्तु को बार-बार सामने पाकर कुछ घबरा-से जाते हैं, कुछ अरुचि-सी पैदा होती है। राधाकृष्ण की प्रेमलीला और गोपी-उद्धव-संवाद का वर्णन हिन्दी के किस पुराने शृंगारी कवि ने नहीं किया है। हम मानते हैं कि इस पिष्टपेषण में जी को

उबा देनेवाला मसाला मौजूद है; परन्तु हमें यह भी मानना पड़ेगा कि यदि विश्लेषण किया जाय तो संसार की सभी भाषाओं के साहित्य में, विशेष करके उस साहित्य में जो "क्लैसिक" (Classic) कहलाता है, भावों की व्यापकता की परिधि अधिक विस्तृत नहीं है। यदि प्रत्येक दृष्टि से छानबीन की जाय तो जान पड़ेगा कि कविता के लिये सर्वांग रूप से उपयोगी विषय थोड़ी ही संख्या में उपलब्ध हैं। यों तो प्रतिभावान् कवि भैंसा और भूसा पर भी सुन्दर कविता रच सकता है, परन्तु औसत दर्जे की प्रतिभावाले कवि को भैंसे की अपेक्षा 'कोकिला' और भूसे की अपेक्षा 'हरी लता' पर रचना करने में अधिक सुभीता दिखलाई पड़ेगा। ब्रजभाषा के पुराने शृङ्गारी कवियों ने विषय-निर्वाचन की परिधि अधिक संकुचित अवश्य कर दी है; परन्तु जिन विषयों का आश्रय लेकर भारती का शृंगार किया गया है वे पूर्णतया कवित्वमय अवश्य हैं।

शृंगाररस की कविता के सम्बन्ध में भी दो एक बातें निवेदन करनी हैं। पुराने शृंगारी कवि दो प्रकार के थे एक भक्त और एक लौकिक यथार्थवादी अभक्त (Realistic)। भक्त कवियों के शृंगार-वर्णन दंपति के रूपक में आत्मा और परमात्मा की केलि हैं। राधा आत्मा हैं कृष्ण परमात्मा हैं। आत्मा परमात्मा को प्राप्त करने के लिये मचलती है। यह मचलाहट पति और पत्नी के भिन्न-भिन्न शृंगारिक मनोभावों से बहुत अधिक मिलती-जुलती है। Mysticism (रहस्यवाद) की विवेचना करने वाले एक अंग्रेज़ लेखक का तो यहाँ तक कहना है कि दंपतिवाले रूपक की सहायता के बिना भक्त की परमात्मा-प्राप्ति की भावना का वर्णन ही नहीं हो सकता

है। ईसाइयों की Bible में Solomon's Songs का बड़ा महत्त्व है। इन्हें Song of Songs कहते हैं। हिन्दी के भक्त कवियों की भावनाओं में जो बात है Solomon's Songs में भी वही बात है। स्वकीया और परकीया के लौकिक भेद भक्तों की भक्ति-भावना के परे हैं। भक्त के सर्वस्व-समर्पण के सामने इनकी चर्चा व्यर्थ है। "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये" का आदर्श बहुत ऊँचा है। राधा भक्त की साक्षात् मूर्ति हैं। उनमें भक्ति-भावना का उच्चतम विकास है। उनके सम्बन्ध में स्वकीया-परकीया की तकरार की दरकार नहीं है। या तो सूरदास और हित-हरिवंश आदि कवि भक्त न थे और यदि थे तो उनका राधाकृष्ण का केलिवर्णन अलौकिक भक्ति का स्पष्टीकरण है। उस केलि में लौकिक विषय-वासना की छाप नहीं है। एक वेश्या भी भगवती है और जगज्जननी पार्वती भी भगवती हैं। क्या पारवती जी को भगवती कहते समय हमारे मन में कलुषित भावनाएँ उठती हैं? विलकुल नहीं—तब वेश्या के भगवतीत्व के साथ उठनेवाली बुरी वासनाओं की तुलना हम पार्वती जी के भगवतीत्व के साथ क्यों करें। शिव जी की लिंग-पूजा क्या हमारे मन में कोई लज्जाजनक भाव लाती है? नहीं—तब लौकिक लिंग के कालुष्य को हम शिवलिंग में क्यों खोजें। परमेश्वर को हम पिता कहते हैं। जहाँ पिता हैं वहाँ माता हैं। माता-पिता का लौकिक सम्बन्ध तो इन्द्रिय सम्बन्ध से अछूता नहीं है। फिर क्या हम ईश्वर में भी (परमपिता रूपक के कारण) विलासिता की दुर्गन्ध सूँघने लगें? क्या ईश्वर को परमपिता कहना उसकी छीछालेदर करना है? रूपकों की एकदेशीयता का तारतम्य बिगाड़ने से बहुत अधिक गड़बड़ी की सम्भावना है। राधा-

कृष्ण की केलि में आत्मा-परमात्मा की संयोग-लालसा के अतिरिक्त लौकिक नर-नारी सम्बन्ध के इन्द्रिय-जन्य-विलास का सत्कार उचित नहीं है। हाँ अभक्त शृंगारी कवियों की राधाकृष्ण केलि में कहीं-कहीं कालुष्य का प्रतिविम्ब अवश्य है। वहाँ आत्मा-परमात्मा की संयोग-कामना वाला रूपक बतलाना कष्ट-कल्पना की पराकाष्टा है। अनेक अभक्त कवियों के राधाकृष्ण तो छैलछबीली के समान ही दिखलाई पड़ते हैं। भक्तों और अभक्तों के शृंगार-वर्णन में भेद है। राधाकृष्ण की केलि का वर्णन दोनों ही प्रकार के कवियों ने किया है। पर दोनों के ही दृष्टिकोण में अन्तर है। एक में अध्यात्मिकता है और दूसरी में लौकिकता। दोनों के ही वर्णन जब एक ही मानदण्ड से नापे जाते हैं तब भारी गोलमाल का होना अनिवार्य है। हम यह मानते हैं कि कविता का उद्देश्य सदाचार का संघार करना नहीं है, परन्तु साथ ही हमारा यह भी कहना है कि कवि कोरा सदाचार का उपदेशक भी नहीं है। जो हो हमारे पुराने कवि जैसे कुछ थे वह उनकी कृतियों से प्रकट है। हिन्दी-साहित्य में उनकी कृतियों का अब वही स्थान है जो योरोपीय साहित्य में Classic Poetry का। क्रांति के युग में सभी पुरानी वस्तुओं पर आक्षेप किये जाते हैं। पुरातन का पराभव किये बिना क्रांति को सफलता ही नहीं मिल सकती। क्रांति के युग में योरोपीय क्लैसिक पोइट्री पर भी भीषण प्रहार हुए, परन्तु क्रांतियाँ आईं और चली गईं, फिर भी क्लैसिक पोइट्री बनी रही। भारत में भी इस समय क्रांति का प्रवाह बह रहा है। ब्रजभाषा की श्रृङ्गार-रस की कविता पर आक्षेप हो रहे हैं। कुछ अंशों में ये आक्षेप ठीक हैं और कुछ अंशों में बिलकुल व्यर्थ। हमारा विश्वास है कि

व्रजभाषा की पुरानी कविता में इतनी शक्ति है कि वह इन प्रहारों से लुप्त नहीं होगी। क्लैसिक पोइट्री के समान उसकी भी सत्ता वनी रहेगी।

व्रजभापा की पुरानी कविता की शैली एवं विपय-प्रतिपादन के ढंग को राजा रामसिंह जी ने भलीभाँति अपनाया है। पुराने कवियों के समान ही इन्होंने भी अन्योक्तियों, रूपकों एवं रसोपयुक्त काव्य-शास्त्रीय विषयों का आश्रय लिया है, इसीलिये मोटे तौर से जो वातें पुराने कवियों की रचनाओं के सम्वन्ध में कही जा सकती हैं वही राजा साहव की कविता पर भी लागू हैं। राजा साहव किसी नये पथ के पथिक नहीं हैं। व्रजभापा के कवि जिन भावों को प्रचलित सिक्कों के समान अपने काम में लाते हैं, राजा साहव ने भी उनपर अपनी विशेपता की छाप लगाकर साहित्य के हाट में उनका व्यवहार किया है। उनकी अन्योक्तियों में कैसी विलक्षणता है, उनकी शृंगार सूक्तियों में कितना रस है, उनके भावों के साथ अलंकारों की जगमगाहट कहाँ तक सौंदर्य-वर्धिनी है, व्यंग और ध्वनि के सत्कार में वे कहाँ तक सफल हुए हैं, यह सब बातें "मोहन-विनोद" पढ़नेवाले पाठकों के सामने हैं। सहृदय के हृदय इसके साक्षी हैं। अपनी रुचि और गति के अनुसार हम भी यहाँ पर कुछ उदाहरणों का संकलन करेंगे।

५—कुछ भाव और उनका स्पष्टीकरण

तिया-रूप-दृढ़जाल गहि, सरस बचन-मय-बीन।
निसि तव छबि-हरिनी हनी, मनमथ बधिक प्रबीन।।

नायक अन्यत्र रात्रि-भर विहार करता रहा। प्रातःकाल जब वह घर आया तो उसकी मुखश्री क्लांत थी। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। खण्डिता नायिका ने इस पर चुटकी ली। उसका वचन-विलास सरस और सौन्दर्य-पूर्ण है। वह कहती है कि स्त्री-सौन्दर्य के जाल में अच्छी तरह जकड़ कर और वीणा-रूपी मधुर वचन-विलास में उलझा कर कामरूपी व्याधे ने गत रात्रि में आपकी छविरूपी मृगी को खूब ही मारा।

सांझ समै नियरात ज्यों, सकल कमल मुरझात।
अजब सखी तव मुख-कमल, विकसित अधिक लखात ॥

संध्या होते-न-होते—सूर्य के अस्ताचलगामी होने के कारण—सारे कमल मुद्रित हो जाते हैं। सखी नायिका के मुख-कमल से भी यही आशा करती थी। पर यहाँ बात उलटी हुई। नायिका का मुख-कमल तो और भी प्रफुल्लित दीखने लगा। कारण सखी को अवश्य मालूम होगा परन्तु वह कैसी अनजान बन कर, भोलेपन के साथ, रसीली बात कहती है। वचन-चातुरी की विदग्धता मनोहर है।

जो कछु लघुता करत हौ, सो असीम है ईस।
फिरि यह मो पायन परन, अति अनुचित जगदीस ॥

नायिका नायक से कहती है "प्राणनाथ! मुझे रिझाने के लिये आप बड़े हलके काम कर रहे हैं, अब तो आप के ऐसे कामों की हद ही न रही। इतने ही पर्याप्त थे, उस पर अब आपने मेरे पैरों पर गिरना भी प्रारंभ कर दिया। यह तो बड़ी बेजा बात

है।" नायिका की इस युक्ति में सरसता है, स्वाभाविकता है, मीठी फटकार है और छिपा-छिपा प्रेम-गर्व भी है।

रति-मदहर-बृषभानुजा, मूठि गुलालहिं संग।
भेंट कियो ब्रजराज को, चंचल-चित्त-मतंग ।।

चंचल चित्त की मतंग से समता अत्यन्त सुन्दर है। ब्रजराज को इससे बड़ी और कौन भेंट दी जाय। इस दोहे में "मूठ गुलालहिं" का प्रयोग बड़ा विदग्धता-पूर्ण है। मस्त हाथी को 'गुलाल' के द्वारा ही खदेड़ा जाता है। इधर मुट्ठी-भर गुलाल का रंग भी निराला है। इस रंगीन गुलाल में तो मानों उद्दीपन का ही चूर्ण मिला है। और वह गुलाल है कितना—बस मुट्ठी-भर। कितनी करामात है! इस मुट्ठी-भर धूल में—वृषभानुजा—ख़ूब तेज़-तबीयत—राधा जी का (वही राधा जी जिनको देखकर साक्षात् रति का गर्व चूर्ण हो जाता है) चंचल चित्त भी ब्रजराज की भेंट हो गया।

असित बरन अति निज निरखि, सोंचु न करु घनस्याम।
सरस-हृदयता करति तुव, स्यामलता छबि-धाम ।।

इस दोहे में कवि ने एक सुन्दर अन्योक्ति का समावेश किया है। मेघ का रंग भी श्याम है और श्रीकृष्णचन्द्र भी 'घनश्याम' हैं। घन का अन्तस्तल जल से परिपूर्ण है इधर घनश्याम का हृदय सरस है। इसलिये दोनों को अपने काले रंग की परवा न करनी चाहिये। जल और सहृदयता के कारण दोनों के वर्ण का आदर

है। किसी भी गुणी परन्तु कुरूप पुरुष के प्रति इस अन्योक्ति की चर्चा की जा सकती है। जिस समय कवि ने इस युक्ति की रचना की होगी उसका मन अन्योक्ति में उलझा होगा, फिर भी भाव जब स्वाभाविक रीति से भाषा के आवरण में सुशोभित होता है तब उसमें और भी अनेकानेक अलंकारों का सहज प्रादुर्भाव होता है। अलंकारों का ऐसा विकास उक्ति की प्रौढता का परिचायक है। देखिये—सरस हृदयता का यह काम है कि श्यामलता—कलुषता—को दूर कर दे, परन्तु यहाँ वही उसकी शोभा को बढाती है। इसी प्रकार जल का काम है कि कालुष्य को धो डाले, परन्तु यहाँ उलटे कालुष्य 'छबिधाम' बन जाता है। सरस-हृदयता गुण है, इस गुण के कारण श्यामलता दोष भी गुण हो गया है। बड़ों के सत्संग से छोटे भी बड़े बन जाते हैं। "पारस-परसि कुधातु सुहाई।" सरस-हृदयता हेतु है, श्यामलता का छबिधाम होना हेतुमान है। श्यामसुंदर और मेघ का श्यामवर्ण स्वभावतः सुन्दर है, उसमें असुन्दरता की कोई वात ही नहीं है। सरस-हृदयता में और उसमें जो विरोध दिखलाई पड़ता है, वह विरोध नहीं, विरोधाभास-मात्र है। किसी की श्यामलता को "छबिधाम" बनाना बुरा काम है। बुरे काम का वर्णन भी बुरा है। तब सरस-हृदयता के श्यामलत्व को छबिधाम बनाने की बात कहना एक प्रकार की निन्दा हुई, परन्तु असल में है यह स्तुति। सरस-हृदयता द्वारा श्यामलता का छबिधाम बनाना अद्भुत् रसवत् भी समझ पड़ता है। असित-अति, निज-निरखि, सरस-हृदयता—श्यामलता आदि में शब्दालंकारों की भी शोभा है। सरस-हृदयता कोई प्राणी नहीं, जो किसी क्रिया का सम्पादन करे, इसलिये लक्षणा की सहायता भी मौजूद है।

अभिधामूलक वाक्यावली के पीछे तात्पर्य की बात यह है कि यदि किसी पुरुष में गुण हैं तो उसकी कुरूपता भी सुन्दरता में परिगणित हो जाती है। गुणी को बाहरी कुरूप की परवा न करनी चाहिए, सब बातों पर ध्यान देने से यही जान पड़ता है कि दोहा सत्काव्य का एक अच्छा उदाहरण है।

ना उत बौरत अंब कहा,
कहा मंजुल गान विहंग न गावत ?
मोहन सीतल मंद सुगंधित
पौन कहा न तहाँ सरसावत ?
का मदमाते मिलिंद उतै
बन-बागन मैं रव नाहिं सुनावत ?
आयो न कंत-संदेस अजौं
सखि का उहि देस बसंत न छावत ?

उपर्युक्त सवैया में जो सुन्दर भाव जगमगा रहा है वह एक विरहिणी की उक्ति है। कई पुराने कवियों ने भी वसंत-उद्दीपन की उपस्थिति में विरहिणी के द्वारा इसी ढंग की उक्तियाँ कहलाई हैं। राजा साहब का वर्णन संयम-युक्त है। उसमें कातरता का प्रकाश स्वाभाविकता का पल्ला नहीं छोड़ता है। नायिका अपनी वियोग-वेदना को भोलेपन के साथ प्रकट करती है। संयम, सरलता, भोलापन और स्वाभाविकता इस सवैया की विशेषताएँ हैं।

सेवती सो बहु प्रीति करी अलि,
ताको भयो रस-चाखन प्यारो।

नेह पै ना फिरि ध्यान धरचो
थल और गयो तजि ताहि ठगारो ।।
मोहन याही तैं वा उर मांहि,
उठ्यो दुख-रूप दवानल भारो ।
तामैं मनौ जरि अंग गये,
तबतैं खल भृंग भयो अतिकारो ।।

भृंग क्यों काला है इसका कारण सुनिए—पहले मधुप जी सेवती के उपासक थे। सदा उसी के प्रेम में मग्न रहते थे। कुछ काल के बाद आपका यह भाव जाता रहा। आपने सेवती को धोखा दिया। दूसरे फूल में रम गए। वह बेचारी अत्यन्त दुखी हुई। उसके हृदय में दुख-दावानल जलने लगा। इसी दुख-दावानल में जल कर भृंग जी काले पड़ गए। वर्ण की श्यामता का कवि ने सुन्दर कारण ढूँढ़ लिया।

सागर तू निज तनय लखि , क्यों एतो इतराय।
रतनाकर-गौरव कहा, दोषाकर-सुत पाय ।।

पुत्र का गुणी होना पिता के लिये उचित अभिमान की बात है। परन्तु जब योग्य पिता अयोग्य पुत्र की प्राप्ति पर इतराता है तब उसका यह गर्व उपहासास्पद जान पड़ता है। 'रतनाकर' रत्नों की खान है। उसका पुत्र तो उसके उपयुक्त ही होना चाहिए पर 'दोषाकर जी' जैसे कुछ हैं वह सब पर प्रकट ही है, दोषों की खान हैं। वह कलंकी हैं, क्षयरोग से पीड़ित हैं, रात को इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, व्यभिचारी हैं और उनमें जड़ता भी मौजूद है। ऐसे

कपूत पर ऐसा घमंड ! ऐसे पुत्र से सागर का क्या गौरव हो सकता है ? बदनामी की बात ज़रूर है। बड़ी बढ़िया अन्योक्ति है।

ओछे नर को उच्चपद, किमि करि सकै महान।
कहा असुर-गुरु मीन-गत, होवत ससी-समान ।।

राजा रामसिंह जी ने ज्योतिष-शास्त्र का भी अध्ययन किया है। उपर्युक्त दोहे में आपके ज्योतिष-ज्ञान का आभास मौजूद है। बड़ा आदमी जब उच्चपद पर पहुँचता हैं तो उसका बड़प्पन कल्याण-प्रद सिद्ध होता है। ओछे आदमी को जब बड़ी पदवी मिलती है तो वह अपनी ओछाई के कारण उस पदवी से तादृश लाभ नहीं उठा पाता है। असुरों के गुरु शुक्र जी आखिर नीच-प्रसंगी ही हैं और चन्द्रमा की वात ही दूसरी हैं। ये दोनों ही उच्चपद पाते हैं। एक ही राशि में पड़ते हैं परन्तु शुक्र का फल और है और चन्द्रमा का और है। ऊँचा पद ऊँच-नीच के अन्तर को नहीं मिटा सकता है।

कमल विमल तैं पूजिबो, सिव को अधिक सोहात।
जैहौं तिनको ताल पै, लेन अकेलो प्रात ।।

"अमुक पुरुष को कमल पुष्पों द्वारा शिवार्चन बहुत पसंद है इसलिये वह अमुक सरोवर पर प्रातःकाल अकेला ही फूल लेने को जायगा।" इस सीधे सादे कथन में कोई कविता चमत्कार की बात तो नहीं दिखलाई पड़ती है। अभिधाशक्ति के सहारे तो हमारा काम चल नहीं रहा है। लक्षणा की मदद भी बेकार है, हाँ व्यञ्जना शक्ति का आश्रय लेने से दोहे में कविता-शक्ति की स्फूर्ति का पता

चलता है। शिव जी की पूजा के लिये ताल पर जाने की बात कोरी बहानेबाज़ी है। मामला और ही है। नायिका से संकेत में मिलना है। उसको संकेत-स्थल की सूचना भी देनी है और ऐसे ढंग से देनी है कि नायिका के अतिरिक्त और जो कोई सुने वह तो वाच्यार्थ पर संतुष्ट होकर उसे साधारण बात माने और नायिका व्यंग्यार्थ समझ कर नायक को सहेट में कृतार्थ करे। प्रातःकाल सरोवर पर जाने के लिये नायिका को बीसों बहाने मिल जायँगे। संकेतस्थल पर कमल-पुष्पों की प्राप्ति उद्दीपन की सामग्री भी है। व्यंग्यार्थ की रमणीयता से दोहे में सत्काव्य है। शृंगार-रस का यह उत्तम उदाहरण है। भाषा साफ़-सुथरी और शब्द-योजना मनोहर है। अनुप्रास चमत्कार भी ख़ासा है।

नीके फूल गुलाब के, भ्रमर रहे लिपटाहि।
जो सुख दरसन में मिले, परसे मिले न ताहि ।।

यह दोहा यहाँ पर इस उद्देश्य से नहीं उद्धृत किया गया है कि इसमें कोई बड़ा चमत्कारपूर्ण भाव भरा हो वरन् इसलिये कि राजा रामसिंह जी की रचनाओं में सब से पहले यही बना। कहते हैं जब यह बना तो राज्य के साहित्य-समाज में बड़ा आनंद मनाया गया। प्रथम-रचना की दृष्टि से दोहा अच्छा है। गुलाब को देखकर भौंरे को जितनी प्रसन्नता होती होगी क्या उतनी ही स्पर्श में भी सुलभ होगी?

कोऊ मधुपान मांहि मानत अनंद अति,
जामैं नास होवै वेगि धर्म, धन, तन है।

कोऊ बहु खेलन मैं धारत प्रमोद महा,
जामैं वृथा बुद्धिबल होवत कदन है ।।
कोऊ नीच कामन मैं आनँद अपार गिनैं,
जामैं नर खोय सब परै नरकन है ।
मेरे जान मतिमान हिय के विलास हेत,
दूषन-रहित बर कविता-व्यसन है ।।

यह कवित्त भी किसी कवित्व-चमत्कार का परिचय कराने को नहीं उद्धृत किया गया है वरन् यह दिखलाने के लिये कि अन्य व्यसनों को बुरा मानने वाले राजा साहब कविता-व्यसन को मतिमान हृदय के विलास के लिये अच्छा समझते हैं ।

अंक-युक्त ससधर जबै, हरन ताप परबीन ।
क्यों न करै फिरि बिधु-बदन, अंक-हीन दुख छीन ।।

चन्द्रमा के अंक में कलंक है—फिर भी कलंकी होते हुए भी—वह प्रवीण लोगों के संताप को दूर करता है । नायिका का मुखचन्द्र तो सर्वथा निष्कलंक है, तब यदि उससे दुःख क्षीण पड़ जावें तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है । जो त्रुटि-पूर्ण है वह जब एक काम कर लेता है तब त्रुटि-हीन उसको क्यों न कर लेगा ? नायिका के मुख की प्रशंसा किस चतुरता के साथ की गई है ?

खेलन सिकार आजु गए ब्रजराज बन,
ताको अनुराग नेकु उर सों बिसारे ना ।

कैधौं तहँ साधुन सों 'मोहन' की भेंट भई,

कैधौं मृग सिंह ब्याघ्र सूकर बिडारे ना ।।

कैधौं कछु घायल ह्वै आलि ! पसु भाजि गये,

हेरत बिपिन तिन्हैं कितहूँ निहारे ना ।

रजनी पहर गई आहट सुनाति नाहिं,

कारन कवन नाथ अबलौं पधारे ना ।।

उत्कंठिता नायिका की इस युक्ति में कुछ नवीनता है। ब्रज-राज शिकार को गए थे। अभी तक लौटे नहीं हैं। उन्हीं की प्रतीक्षा है। देर होने के कारण सोचे जा रहे हैं। क्या साधु-महात्माओं से तो भेंट नहीं हो गई ? क्या शिकार के जीव मिले नहीं ? क्या घायल शिकार भाग गया ? क्या बात है ? क्यों नहीं आए ? नायिका को इस बात का सन्देह नहीं है कि अन्य स्त्री से भेंट हो गई होगी। छंद में यही नवीनता है।

सगुन अनंद कंद होन ही लगे हैं आजु,

गोकुल के इंदु जदुनंदन पधारि हैं ।

मोको पाद-पंकज की दासी जानि मेरी ओर,

नेह भरे नैनन तैं 'मोहन' निहारि हैं ।।

मधुर सुधा से बैन बोलि ब्रजचंद आली,

प्यास मेरे श्रौनन की पूरन निवारि हैं ।

मंद-मंद हासन तैं मोको निज अंक भरि

मेरे सब अंगनि की तपनि उतारि हैं ।।

इस घनाक्षरी की शब्द योजना बड़ी सुन्दर है। शब्दों का संगठन मनोहर और भाषा-प्रवाह स्वच्छन्द है। आगतपतिका की आनन्द-कल्पनाएँ संयत, पुनीत एवं सुकुमार हैं। छंद में प्रेम-भाव की प्रतिष्ठा आशा से परिपूर्ण है। कोमलता और स्वाभाविकता के साथ विहार करने के कारण संयोग की आशा में एक रमणीय आकर्षण भर गया है।

६—संस्कृत सूक्तियाँ

राजा साहब की संस्कृतमयी सूक्तियों का आस्वादन भी आवश्यक है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

समय की दीर्घता का अनुभव सुखी मनुष्य को अधिक होता है अथवा दुखी को? सुखी के तो साल के साल आनन्दोपभोग में पलक मारते बीत जाते हैं। उसे पता भी नहीं रहता कि कितना समय बीता, पर बेचारा दुखी समय के साथ घुला करता है। एक एक दिन युग के समान प्रतीत होता है। काल भार-स्वरूप हो जाता है। काटे ही नहीं कटता। इस भाव को कवि ने कैसी सरसता से प्रकट किया है :—

जानाति किं सकल-भूमि-सुखोपभोगी
वर्षाणि यान्ति खलु तस्य निमेष-तुल्यम्
शोकाकुलेन मनसा दिवसानि यस्य
गच्छन्ति तेन विदितं समयस्य दैर्घ्यम्।

स्वदेशानुराग के सम्वन्ध में भी कवि की एक उक्ति सुनिए :—

धनदविभवभाजः काम-कान्तेर्विजेतुः
सकल-सुगुण-राशेः सर्व-विद्यावतोऽपि
हृदि न वसति पूर्णो यस्य देशानुरागः
परम-मलिन-कीर्तेस्तस्य किं जीवितेन् ।

बड़े-बड़े कवियों की सुन्दर कविता तो पहले से ही मौजूद थी, फिर राजा साहव ने यह विपुल प्रयास क्यों किया—इतनी रचना क्यों कर डाली—इस उपालंभ का सरस उत्तर राजा साहब के शब्दों में ही सुनिए :—

पुरा कवीनां सति साधु काव्ये
वृथा प्रयासं गणयन्ति ये मे
निवेदनं तान्प्रति मे विनीत
मलंघनीया मनसः प्रवृत्तिः ।

कैसा सच्चा जवाब है? घुमाव-फिराव और बनावट का नाम नहीं। सीधी बात है। मन को सम्बोधन करके इन्होंने कई श्लोक बनाये हैं। देखिए :—

दुःखं ददाति खलु दुर्ललितं मनो मे
नाद्यापि तेन विधृतः सुविनीत भावः

हे राम राघव मदोद्धत-नम्रकारिन्
त्वत्पाद-चुम्बन-परं कुरु तत्प्रमत्तम् ।

दुर्ललित और प्रमत्त मन को कैसी करारी फटकार दी गई है, सो भी उसी के कल्याण के लिये—उसी को विनीत और नम्र बनाने के लिये।

७—कुछ और सुन्दर सूक्तियाँ

कवि की दस और सुन्दर सूक्तियाँ यहाँ पर दी जाती हैं। स्वयं इन पर कोई टीका टिप्पणी न करके हमारा पाठकों से अनुरोध है कि वे एक बार इनको भी पढ़ जायँ।

१—*खल*

मंजु गज-मोती-काज करि-कुंभ फारिबे को,
'मोहन' परम लोभी श्रम ज्यों धरतु है।
मृगन को मारिबो बिचारि मृगमद हेतु,
ब्याध धारि आयुध ज्यों बन बिहरतु है॥
भील-दल भेदिबे को चंदन के वृच्छन को,
उद्यम मैं रैन-दिन जैसे होत रतु है।
सुजन सतावन को ऊधम मचावन को,
तैसे खल कोटिन उपायन करतु हैं॥

२—*गुलाब*

मोहक महान याके सुखमा प्रसूनन की,
मंजु-कुंज-बागन की सोभा वृद्धि करनी।

'मोहन' मिलिंदन को सुखद मरंद त्योंहीं,
खिलनी बसंत बीच वाकी मोद भरनी ॥
अतर अनूप वाको आदर करै न कौन,
सुंदर सुगंधि सदा लोग चित्त हरनी ।
कांटन को दोष एक सुगुन अनेक याते,
गौरव गुलाब क्यों न पावै बीच धरनी ॥

३—अरविंद के प्रति उपालम्भ

तेरे गुन भूरि सुनि मित मों मधुप मुख,
छोरचो घर आज भयो आदित उदित है ।
याही आस धारि चल्यो मीठे मधु पीहौं बेगि,
आनिहौं कछुक गेह बालक के हित है ॥
नीठि-नीठि सांझ-समै पहुँच्यों हौं तेरे ढिग,
'मोहन' इतै पै मोहि कीनो तैं दुखित है ।
एरे अरविंद तू न देत मकरंद जो पै,
मूंदि कैद करिबो यों तोको ना उचित है ॥

४—नूतन-पुरातन

नूतन सबही अगुन नहिं,नहिं सब सगुन पुरान ।
जोग-अजोग बिचारि उर, धारन करत सुजान ॥

५—तुच्छ तलैया

यह सरसी, नहिं मानसर, यहाँ न जलज-निवास ।
सुनु मराल! सो थल यहै, बक जहँ करत बिलास ॥

६—दीपक

नेह-विनासक उर मलिन, उज्ज्वल उपरि अपार।
सलभ! दीप तैं प्रीति करि, क्यों जरि होवत छार॥

७—बाँसुरी के प्रति

जानति हरि की बाँसुरी, उर-छेदन की पीर।
फिरि तू मो उर छेदिबे, हा! क्यों होत अधीर?

८—पुनश्च

'मोहन' के मुख लागि वह, बिसरि गई तुहि बात।
यातैं तू निरदय भई, करन लगी यों घात॥

९—चितचोर कृष्ण

हरि जा दिन गोरस चोरि भज्यो,
वह चोर भयो हम जानि लयो।
सब जाय कही तउ आलि! अजौं,
उतको न यसोमति ध्यान गयो॥
बिन सासन दोष बड़े सिसु के,
यह जानति पै नहिं दंड दयो।
अब देखिलो माखन चोरत-चोरत,
कान्ह महा चितचोर भयो॥

१०—श्री राधाकृष्ण

जब ते तिहारे संग बेद-बिधि ब्याह कीनो,
प्रीति-पंथ तै न नेकु तब ते टलतु है।
कामी को कुसंग न, धरम-मग-गामी सदा,
दीठि पर-नारिन पै नेकु न ढलतु है॥
हारीं ब्रजबामा सबै छल-बल करि-करि,
'मोहन' अचल चित नाहिं बिचलतु है।
राधे तव प्रीतम को पेखि इक पत्नीव्रत,
साधुन की साधुता को गौरव गलतु है॥

८—सादृश्य में व्यक्तित्व-रक्षा

हिन्दी-कविता में परम्परा से यह रीति प्रचलित है कि परवर्ती कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों के भावों, रूपकों एवं शब्द-योजना के सौन्दर्य से लाभ उठाते रहते हैं। लाभ उठाते-समय वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि पूर्ववर्ती का अनुकरण करते हुए भी अपनी कृति में विशेषता की छाप दे दी जाय। जो कवि अपने विशेषत्व को स्थापित करते हुए पूर्ववर्ती कवि का अनुकरण करते हैं, उनकी प्रशंसा होती है परन्तु जो इस उद्योग में असफल हो जाते हैं, उनका अनुकरण बुरा माना जाता है। राजा रामसिंह की कविता में सर्वत्र उनके व्यक्तितत्व की छाप है। अगर कहीं पर उन्होंने पूर्ववर्ती कवि की कृति से लाभ उठाया भी है तो उसे अपने साँचे में ढाल

लिया है। उक्ति में कोई विलक्षणता अथवा नूतनता पैदा कर दी है—कुछ उदाहरण लीजिए :—

भृकुटी मटकनि, पीत पट, चटक लटकती चाल।
चल चख चितवनि चोरि चित लियो बिहारीलाल॥
—बिहारी

तव मूरति की लटक नित, अटक रही इन नैन।
जेहि ढूँढन भटकत फिरौं, पटकि सीस दिन-रैन॥
—मोहन

को कहि सकै बड़ेनु सौं, लखैं बड़ीयौ भूल।
दीने दई गुलाब के, इन डारनु वे फूल॥
—बिहारी

मोहक महान याके सुखमा प्रसूनन की,
मंजु कुंज-बागन की सोभा वृद्धि करनी।
मोहन मिलिंदन को सुखद मरंद त्योंहीं,
खिलनि बसंत बीच याकी मोद भरनी॥
अतर अनूप वाको आदर करै न कौन,
सुंदर सुगंधि सदा लोग चित्त हरनी।
काँटन को दोष एक सुगुन अनेक याते,
गौरव गुलाब क्यों न पावै बीच धरनी॥
—मोहन

शृंगार-रस में टवर्ग का प्रयोग अच्छा नहीं माना गया है परन्तु कहीं-कहीं पर तो वैसा प्रयोग कोमल-कान्त-पदावली से भी अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। बिहारी के उपर्युक्त दोहे में तादृश प्रयोग कितना रमणीय है। राजा साहब के दोहे में भी टवर्ग की यही बहुलता सुखद है। बिहारीलाल के दोहे में नायिका के चित्त को "बिहारीलाल" ने चुरा लिया है इतना ही कथन है, परन्तु राजा साहब के दोहे में यह मूर्ति की 'लटक' ऐसी 'अटक' रही है कि नायिका उसकी खोज में सीस 'पटक' कर (सिर धुनती हुई) 'भटक' रही है। दोहे के प्रत्येक चरण में क्रम से लटक, अटक, भटक और पटक का प्रयोग मनोहर है। 'सीस पटक कर भटकना' बहुत सुन्दर बन पड़ा है।

बिहारीलाल जी की राय में झाड़-झंखाड़ और कटीली डालों में गुलाब के फूल उत्पन्न करना ब्रह्मा की भूल है। राजा रामसिंह जी के कवित्त में गुलाब के बहुत से गुणों का उल्लेख है। उतने गुणों की मौजूदगी में राजा साहब एक मात्र काँटों के दोष को क्षमा कर देते हैं। जहाँ इतने गुण वहाँ एक दोष की कौन सी बात है। बिहारी-लाल के भाव का लक्ष्य दूसरा है। उन्होंने बड़ों की भूल पर कटाक्ष किया है और उदाहरण में काँटों की झाड़ में उत्पन्न गुलाब को पेश किया है। मोहन जी गुलाब के फूल पर ऐसे मुग्ध हैं कि उनको काँटों की परवा नहीं। दोनों कवियों का दृष्टिकोण भिन्न है।

बन घन फूलि टेसुइया बगिअन बेलि।
तब पिय चलेउ बिदेसवा फागुन फैलि॥

—रहीम

मेघ नये बुंदिया नई, नव तृन नए वितान।
तजत नवेली नारि को, क्यों नवनाह सुजान।।
——मोहन

ऋतु का उद्दीपन मोजूद है फिर भी नायक प्रवास के लिए तैयार बैटा है। नायिका को ऐसे समय में नायक की यात्रा बहुत खल रही है, वह बहुत पीड़ित है। रहीम के बरवै में यात्राकाल बसंत का है और राजा साहब के दोहे में पावस का। 'रहीम' के बरवै में उक्ति नायिका की है और 'मोहन' के दोहे में सखी की। राजा साहब का 'नव' एवं 'नए' का प्रयोग सरस है।

कियो कंत चित चलन को, तिय हिय भयो विषाद।
बोल्यो चरनायुध सु तौ भयो नखायुध नाद।।
——मतिराम

जब स्याम नै अंग लगाय लई थहराय उठी वह लाज मई।
सुनि कै चरनायुध बोल तबै कछु ताके हिये परतीति भई।।
——मोहन

नायिका नहीं चाहती कि प्रातःकाल होने पर भी नायक से उसका बिछोह हो। इसी से जब मुर्ग़ बाँग देकर प्रभात की सूचना देता है तब उसे उसका शब्द नृसिह भगवान के, अथवा सिंह की गर्जना के समान भयकारी प्रतीत होता है। इसी कुक्कुट की बोली जब मोहन कवि के दोहे की मुग्धा नवेली सुनती है तो उसकी जान में जान आ जाती है। प्रातःकाल की सूचना से उसे हर्ष होता है।

वह जानती है कि अब नायक मेरे पास से चला जायगा। 'चरनायुध' की बोली का प्रभाव एक को दुखद और दूसरी को सुखद है। अपने भाव के पुष्टीकरण में 'चरणायुध' की सहायता दोनों कवियों ने ली है परन्तु दोनों का दृष्टिकोण भिन्न है।

हरिनि रूप विरहीनि कौ जलद जाल बगराय।
बाँधि-बाँधि बानन बधत मार बधिक सम आय ॥
——मतिराम

तिया रूप दृढ जाल गहि सरस बचन मय बीन।
निसि तव छबि हरिनी हनी मनमथ बधिक प्रवीन ॥
——मोहन

'मार-वधिक' के रूपक का प्रयोग मतिराम जी ने सुन्दरता के साथ किया है। मोहन जी का 'मनमथ-वधिक' भी अनूठा है। यहाँ तक तो मामला बिलकुल एक है परन्तु आगे भिन्नता है। मतिराम जी के व्याध के पास जो जाल है वह "जलद" का है। इधर मोहन जी के मनमथ-बधिक के पास 'स्त्री-सौन्दर्य' का दृढ़ जाल है। 'मार-बधिक' की शिकार है "बिरहिणी-हिरनी" और "मनमथ बधिक" के जाल में फँसी है छबि-रूपी हिरनी। मतिराम जी का ब्याधा अपनी शिकार दिन में कर रहा है या रात में, यह मालूम नहीं। हाँ वह उन्हें "बाँधि-बाँधि बानन हनत" है। मोहन जी के "मनमथ-बधिक" ने 'निसि' में 'छबि-हरिनी' 'हनी' है। प्रथम दोहे में कवि की उक्ति है और मदन-जनित विरहिणियों की दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। दूसरे दोहे में खण्डिता नायिका की रसीली पर तीव्र चुटकी है।

नायक के मुख मण्डल की निष्प्रभता पर खण्डिता ने जो फबती कसी है वह मनोहर है। व्याध और हरिनी का रूपक दोनों कवियों ने बाँधा है। इतनी समता दोनों ही रूपकों में है। इसके आगे दोनों कवियों के रूपकों का मार्ग भिन्न-भिन्न है। मतिराम जी का 'जलद-जाल' बहुत सुन्दर है। मोहन जी ने व्याधा की वचन-रूपी सरस वीणा का सुन्दर प्रयोग किया है।

राजा साहब की कविता में पूर्ववर्ती कवियों की शब्द-योजना, रूपक, उक्ति आदि से जहाँ कहीं सदृशता दिखलाई पड़ती है, वहाँ वह ऊपर के उदाहरणों के समान कुछ विलक्षणता और विभिन्नता लिये हुए है। इन्होंने अपना व्यक्तित्व नहीं छोड़ा है और जहाँ कहीं सादृश्य से लाभान्वित भी हुए हैं वहाँ उन्होंने उक्ति में विलक्षणता और नूतनता का समावेश कर दिया है।

९—उपसंहार

राजा रामसिंह जी ने संस्कृत-काव्य-शास्त्र का अध्ययन किया है, इसलिये उनकी कविता में साहित्य के शास्त्रीय नियमों का पालन भली भाँति हुआ है। पुरानी कविता की आलोचना करते समय यदि हम आलोचना प्रणाली के आधुनिक पाश्चात्य-रूप का आश्रय लें तो हम कवि विशेष के साथ न्याय करने में कभी भी समर्थ न हो सकेंगे। इसी विचार से हमने राजा साहब की कविता को आलोचना के नये मापदण्ड से नापने का प्रयत्न नहीं किया है। पुरानी परिपाटी की दृष्टि से राजा साहब की कविता में गुण

अधिक और दोष कम हैं। यों तो दोष-शून्य कविता का मिलना कठिन है, परन्तु जिस रचना में गुणों की अपेक्षा दोषों का आधिक्य हो उसे ही सदोष कविता मानना चाहिए। बहुल गुणों से परिपूर्ण कविता में स्वल्प दोष सर्वथा क्षम्य हैं। राजा साहब के भावों में संयम है। वे भावों की बाढ़ पर भी शासन करते हैं। भावों का तीव्र प्रवाह कविता की सरसता और स्वाभाविकता को बढाता है। जब इस प्रवाह का नियंत्रण किया जाता है तब या तो भाव अपने सहज सौन्दर्य के एक अंश को खो बैठता है अथवा वह सौन्दर्य इधर-उधर बिखर जाता है, जिससे रसास्वादन में कुछ फीकापन आ जाता है। परन्तु संयम और नियंत्रण का प्रयत्न कभी-कभी भाव के सौन्दर्य को बढ़ाने में भी सफल होता है। पाठकगण देखेंगे कि शासन और नियंत्रण के प्रयत्न से कहीं-कहीं तो भाव-सौन्दर्य को राजा साहब ने बढ़ाया है और कहीं-कहीं उसके स्वाद में कुछ रूखा-पन भी आ गया है। 'मोहन-विनोद' ग्रन्थ पहले-पहल हिन्दी-संसार के सामने आ रहा है। इसलिये हमने राजा साहब की कविता के गुणों की ही ओर पाठकों का ध्यान आर्कषित किया है। दोषों की छान-बीन का समय तो तब आवेगा जब हिन्दी-संसार का, एक वार, 'मोहन-विनोद' से भलीभाँति परिचय हो जायगा। इसके अति-रिक्त जिस द्रुति गति से राजा साहब आध्यात्मिकता में लीन हो रहे हैं उससे भी यह विश्वास नहीं होता कि भविष्य में कविता की ओर उनकी प्रवृत्ति का विशेष प्रसार होगा। इसके अतिरक्ति राजा साहब की रचनाएँ प्रधानतः 'स्वान्तः सुखाय' हुई हैं। युवराज रघुवीर सिंह जी के बहुत आग्रह करने पर ही उन्होंने ग्रन्थ के प्रका-शन की आज्ञा दी है। हिन्दी के साहित्य-जगत् में अपना कोई विशेष

स्थान स्थापित करने के विचार से उन्होंने कविता नहीं बनाई है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर हमने राजा साहब की कविता की बहुत गहरी छान-बीन नहीं की है। स्फुट कविताओं का संग्रह होने के कारण गहरी छान-बीन का अवसर भी कम है।

राजा रामसिंह जी ने बाल्यकाल से ही अपने चरित्र को दृढ़ और उच्च आदर्श के अनुकूल बनाया है। जहाँ कोमलता की आवश्यकता है वहाँ वह कोमल हैं; और जहाँ कठोरता की ज़रूरत है वहाँ कठोर हैं। उनके चरित्र का प्रभाव शासन पर पड़ा है। शासन ने चरित्र में परिवर्तन नहीं किया है। राजा रामसिंह जी सफल शासक, कला-पारखी, धर्मात्मा एवं सत्कवि हैं। इनके जीवन के दो पहलू हैं। राज्यशासन का कार्य कुछ नीरस और कठोर होता है। यद्यपि प्रजाप्रेम, कृषकों के प्रति सहानुभूति एवं न्याय में दया के आविर्भाव से शासन की कठोरता में भी मृदुता लाई जा सकती है और राजा रामसिंह का शासन इन गुणों से समवेत है भी, फिर भी शासन तो शासन ही है। उसकी सफलता के साधनों में दृढ़ता, कर्तव्य-परायणता, आतंक, दण्डव्यवस्था आदि का प्रमुख स्थान है। ऐसी दशा में शासक के जीवन के इस पहलू को कठोर ही कहना चाहिए। राजा साहब के जीवन का दूसरा पहलू कोमल है। धर्म-प्रेम और कला-प्रेम का संयुक्त प्रभाव राजा साहब के जीवन के इस पहलू को मृदुल, कोमल और सरस बनाने में समर्थ हुआ है। इस प्रकार जीवन के दोनों पहलू अन्योन्य-प्रतिपूरक हैं। दोनों में सुन्दर समन्वय है। कठोरता और कोमलता की यह कमनीय केलि जीवन को उपयोग और आनन्द का लाभ एक साथ देती है।

हिज़ हाइनेस की कविता एवं व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मुझे जो कुछ निवेदन करना था वह मैं ऊपर कर चुका। अन्त में मुझे यही कहना है कि राजा साहब सफल शासक हैं, इसलिये आपकी कविता में भी साहित्य-शास्त्र के नियमों के "शासन" की प्रतिध्वनि है। आपका धर्म-प्रेम प्रगाढ़ है, और इसी कारण आपकी रचनाओं में संयम का समावेश है। आप भावुक और सहृदय हैं, इसी से आपकी कृति में कोमलता और सरसता है। आपकी कविता की समालोचना का सारांश यही है कि—उसमें शासन, संयम एवं स्वारस्य का सुन्दर समन्वय है।

अब मैं प्रेमपूर्वक 'मोहन-विनोद' ग्रंथ को पाठकों की सेवा में उपस्थित करता हूँ। आशा है कि उससे पाठकों का मनोविनोद होगा। तथास्तु।

सीतामऊ
वट-सावित्री अमावस्या,
संवत् १९९१ वि०।

कृष्णविहारी मिश्र

मोहन-विनोद

१

मंगल-विनोद

१–मंगल-विनोद

१–देव-वंदना

गणपति

सुराग्रपूज्यः सदनं सुबुद्धेः
त्वं लब्धकीर्तिः शुभधीप्रदाने ।
त्वां तेन याचे गणराज ! बुद्धि
मभीष्टदाता खलु याचनीयः ॥

श्री शारदा

कर्पूरतुल्यं धवलस्वरूपं
वस्त्राणि यस्या धवलानि चैव ।
श्रीशारदा सा धवलाम्बुजस्था
मेधां सदा मे धवलीकरोतु ॥
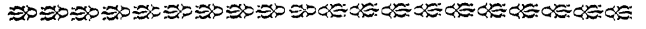
श्री लक्ष्मीनाथ

विश्वावासं त्रिगुणरहितं पूर्णकल्याणमूर्तिम्
सर्वात्मानं निखिलजनकं शेषशय्याशयानम् ।
जीमूताभं सुभगसुभगं सच्चिदानंदरूपम्
लक्ष्मीनाथं परमसुखदं देवदेवं नमामि ॥

श्री गौरीशंकर

हालाहलं खरविषं परिपीय येन
गुर्वी विपत् परिहृता हि सुरासुराणाम् ।
तं शंकरं सुरगुरुं प्रणतापदाघ्नम्
गौरीपतिं स्मरहरं शिरसा नमामि ॥

यस्याः प्रसंगेन शिवस्वरूप
ममंगलं मंगलतां प्रयातम् ।
सा मंगला शंकरवामसंस्था
मे सर्वदा मंगलमातनोतु ॥
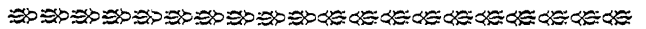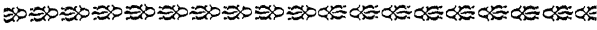
हे नीलकंठ ! भगवन् ! महनीयकीर्ते !
ज्ञातो न कोऽपि भगवत्सदृशो वदान्यः ।
वाञ्छां ममापि परिपूर्य शीघ्रमेकां
मह्यं प्रदेहि रघुनाथपदानुरागम् ॥

यद्भासैव विभाति विश्वमखिलं यस्मान्न तत्वं पर
मानंदैकमयो हरप्रियतरः शान्तस्सदैवाक्रियः ।
चिद्रूपो त्रिगुणादिदोषरहितो नित्यो निरीहो महान्
तं ध्यायेत्सदचिन्त्यरूपमनिशं रामं परं पूरुषम्

यस्य भ्रूभंगमात्रेण लीयते सकलं जगत्
तं सर्वकामदं रामं वन्देऽहं रघुनंदनम् ।

हे राम ! हे ! रघुपते जगदेकनाथ !
हे जानकीरमण ! हे रघुवंशकेतो !
नान्यद् ममास्ति भुवने खलु वाञ्छनीयं ।
गाढं प्रदेहि भगवच्चरणानुरागम् ॥
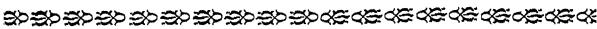
यस्या दुःखाग्निना दग्धा लंका सर्वा ह्यनाथवत् ।
तां सीतां शिरसा वन्दे भक्तानां सुखदायिनीम् ॥
यस्य दयालवेनापि नश्यते निखिलं तमः ।
वन्देऽहं तं जगद्वंद्यं रामरूपं परं गुरुम् ॥

गुरवो मे बह्वोऽन्ये सर्वे मे ज्ञानदायिनः ।
तानहं शिरसा वन्दे तमोऽज्ञानविनाशिनः ॥

मया हि किञ्चित् सुकृतं कृतं न
भक्ति पितुर्वीक्ष्य करोमि धार्ष्ट्यम् ।
त्वया विभोऽहं सुदयाभिलाषी
त्वद्भक्तपुत्रोऽयमवेक्षणीयः ॥

राज्यं धनं परिजन स्तनयः कलत्रं
किं किं त्वया रघुपते भुवि मे न दत्तम् ।
जन्मार्तिनाशनविधौ विफलं तु सर्व
मेकां दयामय ! विना भवदीय भक्तिम् ॥
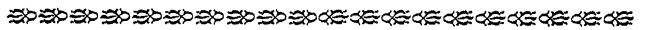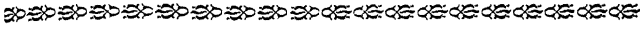
जराग्रस्तं जीर्णं भवति तव देहं प्रतिदिनम्
न कश्चिद्विश्वासो निपतति कृतान्तस्त्वयि कदा ।
तथाप्याश्चर्यं भो ! न तव विरतिर्निन्द्रियविषयात्
गतो वाद्यापि त्वं न हि रघुपतेः पादशरणम् ॥

गतस्य कालस्य कुतोपलब्धिः
सर्वं भविष्यन्तु हरावधीनम् ।
अस्मिन्नतस्त्वं कुरु वर्तमाने
ध्यानेन विष्णोः सफलं हि जन्म ॥

यत्स्पर्शनाद् गौतमधर्मपत्नी
विमुक्तपापा हि गता पतिं सा ।
तद्रामपादाम्बुजपुण्यधूलेः
पुनातु सद्यः स्मरणं मनो मे ॥

गायं-गायं रघुबरगुणान् पावनान् श्रोत्ररम्यान् ।
वारं-वारं सुमनसि जपद्रामनामैकमंत्रम् ।
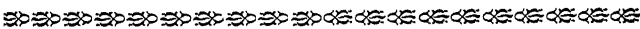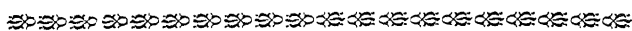
ध्यायं-ध्यायं जलधरनिभं मंजुलं रामरूपम् ।
वेदं-वेदं दृढ़हरिरतिं यातु मे शेषमायुः ॥

कबौं बीच आँगन में खेलत हैं दौरि-दौरि,
मातु-अङ्क-मध्य कबौं लोटत लमकि-लमकि ।
दुरि-दुरि देहरी तैं कबौं तिहुँ भ्रात-संग,
बस्तु भयकारी देखि धावत चमकि-चमकि ॥
नाद घुँघुरून-जुत मोहन महीपै गिरि,
उठि-उठि बार-बार नाचत ठमकि-ठमकि ।
ऐसे रघुनाथ बाल-लीला के करनहार,
कीजिये प्रकास नित्य मो उर दमकि-दमकि ॥

संभुचाप टूटत ही छायो त्रयलोक शब्द,
अब्धि अकुलाये धरा धूजी बहु धर-धर ।
हहराने हिय हय रुकि गयो भानु-रथ,
साधुन समाधि डुली बोले मुख "हर-हर" ॥
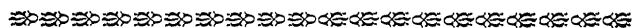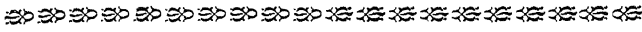
कोल-कच्छ भूले भान ब्याप्यो भय सेष आन,
चिक्करत चौंकि-चौंकि चारों करि डर-डर ।
जेते ब्रह्ममंडल के दैत्य-नर-नाग-सुर,
ताप चढ़ि आई तन काँपि उठे थर-थर ॥

प्रभाती

तारिये श्री लक्ष्मिनाथ ! बानो निज जानी ॥
दाम-काम-अंध मंद फँस्यो जाल मोह-फंद ,
मत्सर अपार नाहिं कबौं कीन ग्लानी ।
क्रोध माहिं रत रही बुद्धी मद-मत्त रही ,
पाप में अमाय नीच रह्यो मोद मानी ।
रट्यो नाहिं नाम भूलि धर्म को न बीज-मूल ;
तीर्थ को न गौन भयो नाहिं योग-ध्यानी ।
'मन-मोहन' जू सहाय कीजिये तुरंत धाय ,
करी ज्यों अधार हीन दास दीन ठानी ।
तारिये हे लक्ष्मिनाथ ! बानो निज जानी ॥

जोगिया
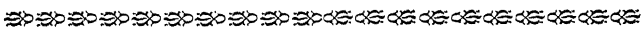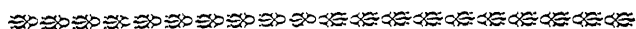
मन रे धर रे भरोसो रघुबर में ।
तजि जग-आस भोग को बिसरो, रति नहिं राखो घर में ।
नग-कुटि-गुहा-निकेतन कहिये, चित मति देवो भर में ।
पितु सुत मातु रु नाती सबही, संग न दे अवसर में ।
'मोहन' मगन रहो किन प्यारे, फिर जिन जोनी नर में ॥
मन रे धर रे भरोसो रघुबर में ॥

फगवा

मन मेरो बिचलि रह्यो आली !
भोग अलौकिक पूरन चाहै, प्रीति नहीं प्रभु-पद पाली ।
मोहन चंचल है चपला सों, रोकि सकौं नहिं चित ख्याली ॥
मन मेरो बिचलि रह्यो आली ॥

होरी

जग में मन खेलत होरी ।
दस इंद्रिय बनिता बनि आईं विषय-रंग में बोरी ।
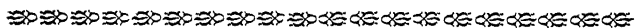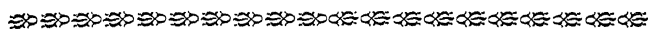
बुद्धी पूर्ण भई पिचकारी काम-रंग-रति जोरी ।।
डूबि रही मति भोरी । जग में मन खेलत होरी ।।

सुंदर देह भवन भल भारी तिमिरि गुलाल घनो री ।
लोभ-क्रोध-मद-मत्सर केरी भरे भूरि नित झोरी ।।
कयौं प्रीति नहिं छोरी । जग में मन खेलत होरी ।।

जीवहि मित्र बसन तन साजी पकरि नचावत डोरी ।
बोरत कबौं मदन रंग गहि कर कबहुँ बनावत गोरी ।।
सूझि परै नहिं थोरी । जग में मन खेलत होरी ।।

होय निसंक बोध बिसरायो डारत लाज मरोरी ।
इहि बिधि प्रबल उपद्रव पेखी "मोहन" कृष्ण-किशोरी ।।
सरन गहौं अब तोरी । जग में मन खेलत होरी ।।

कल्याण

भज रे नर तू नित कुंज-विहारी ।
सुर-वर कोप कियो जब ब्रज पै जिन धार्‍यो गिर-वर भारी ।
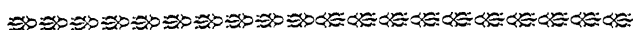
जल मैं ग्राह ग्रस्यो जब गज को हरि कहतहि ताप निवारी ।।
द्रोपदि-चीर दुसासन ऐंच्यो तब द्रुत तिहिं लाज सँवारी ।
जब बन पांडव भीर परी तब मनमोहन पीर बिदारी ।।
भज रे नर तू नित कुंज-बिहारी ।।

मोड़ी-माता

चंडी तू परम चंड सुखमा-अखंड-रासि ,
कुंठित करत बेगि पुंज दुति संपा को ।
पुहुमी पवित्र धर्म पूरन प्रकास्यो मातु ,
मोहन समस्त कीन अस्त पाप झंपा को ।।
भक्त जे हरष-जुत आवत दरस-काज ,
मोद तैं चढ़ावैं तो पै मंजु-माल चंपा को ।
दुष्टन-दलनकारी सुगुन-अनंत-धारी ,
बाहन-मयूरवारी कीजै अनुकंपा को ।।*

* मोड़ीमाता=सीतामऊ की ग्राम-देवी ।
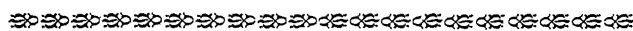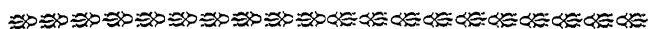
श्री गणेश

एक-रदन विद्या-सदन , उमा-नँदन गुन-कोष ।
नाग-बदन मोदक-अदन , बिघन-कदन हर दोष ॥

तरनि-प्रकास जिमि नासक तिमिर-पुंज ,
नाग-गन-दाप-हारी शब्द खगराज को ।
धाराधर-नाद दिवि सिखी-दुख-दाहक ज्यों ,
मानहर मानसर और सरराज को ॥
ज्ञान-तेज "मोहन" ज्यों हारक अज्ञान-तम ,
चैद्य-कंठ-छेदक ज्यों चक्र ब्रजराज को ।
रावन को प्रानहारी राघव को बान जैसे ,
तैसे दोष दरै सुमिरन गनराज को ॥

श्री राधा

गोपीगन-सुंदरी मैं सुंदरी असीम जानै ,
जानै जग-जननी सकल नर-नारी है ।
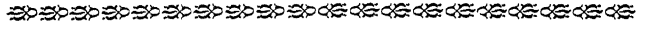
जोगी-जन जानैं सुद्ध ईस की अनंत माया ,
"मोहन" विहारी हिय जानै प्रान प्यारी है ॥
पाप-कीच-लीन नीच जानत प्रचंड मीच ,
आरत अपार जानै उपकार-कारी है ।
दोष-तम जाको सुद्ध चंद्रिका पिछानै सदा ,
ऐसी वृषभानुजा को वंदना हमारी है ॥

श्री माधव

दानव-दुरित-पुंज-दिवा-अंध-वृंदन को ,
दिवाकर दीप्ति-मान दीधिति-निलय सो ।
"मोहन" कुमुद-नैनी गोपिन-चकोरिन को ,
सरद-सुधा से सन्यो भासै चंद-चय सो ॥
जोग-रूप-नौका-रूढ़ जोगी-गन-नाविक को ,
अतट गभीर सिंधु-अनपार-पय सो ।
हरै वेगि ग्रंथ-दोष माधव-मधुर-मुख ,
भक्त-मन-भृंगन को कंज-गंध-मय सो ॥
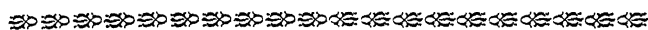
२—वंश-परिचय और आत्म-निवेदन

क्षत्रिय-कुल राठौर को, रह्यो सदा सम्मान।
ताके गौरव की कथा, जानत सकल जहान॥

एक समय कन्नौज तजि, दलबल लेय महान।
वा कुल के पति ने कियो, मुरधर-देस-पयान॥

सनै-सनै वा देस मैं, जम्यो राज राठौर।
तहाँ रहे तबते सदा, या कुल के सिरमौर॥

तिनकी रजधानी भई, प्रथम "मँडोवर" थान।
काल पाय पुनि जोधपुर, पायो सो सम्मान॥

एक बार नृप तहँ भये, उदैसिंह महाराज।
रहे बड़े जस-काय में, वे रठौर-सिरताज॥
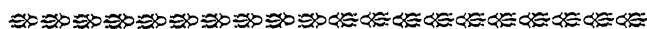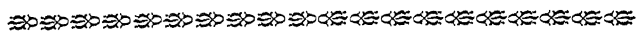
बहुत तनय तिनके भये, तिनमैं दलपति वीर।
या कुल के पूरुब-पुरुष, छात्र-धर्म-रनधीर ॥

पोते तिनके पुनि भये, रत्नसिंह कुल-भान।
दुखित होय इकबार वे, गये सु दिल्ली-थान ॥

लघु बय में साहस कियो, मारि कटार मतंग।
भाजि चल्यो गजपति जबै, होय गये सब दंग ॥

साहजहाँ यह सब निरखि, भये प्रसन्न महान।
कृपाधारि मनसब दियो, कियो बहुत सम्मान ॥

कछुक समय बीते दियो, शाह रतनपुर-राज।
तिन नै मालव-देस मैं, आय कियो तब राज ॥

रोग-ग्रसित सुनि शाह को, गहिं पुरुषनि की रीति।
लोभ-विवस वाके तनय, भये महा बिपरीत॥

औरँग दक्खिन देस को, तजि मुराद गुजरात।
दिल्ली-दिसि दुहुँ बढ़ि चले, लेन तखत निज तात॥

तिन्हें रोकिबे शाह ने, पठयो करि दल-नाथ।
मरुधर-पति जसवंत को, देय और नृप साथ॥

शाह हुकुम तब रतनपुर, रतनसिंह हू पाय।
सेन-सहित जसवंत की, करिबे गयो सहाय॥

औरँग-और मुराद-दल, मिले निकट उज्जैन।
इत ते बढ़ि जसवंत नृप, तहाँ गयो सह-सैन॥
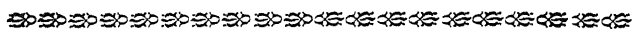
तहाँ उभय दल भिरि लरे, भयो जुद्ध घमसान।
रतनसिंह करि बीरता, सुर-पुर कियो पयान॥

रतनसिंह कुल-मुकुट-मनि, रख्यो वंस-अभिमान।
उरिन शाह उपकार ते, भये देय निज प्रान॥

बारह तिनके सुत भये, बढ्यो बंस-बिस्तार।
मालव महँ ताको रह्यो, बड़ो मान अधिकार॥

रामसिंह तिनमैं प्रथम, भये महा रनधीर।
तनु तजि धारा तीर्थ मैं, सुर-पुर गये सुवीर॥

दोय तनय तिनके भये, शिव अरु केसवदास।
लघु वय में जेठे कियो, जाय अमरपुर बास॥
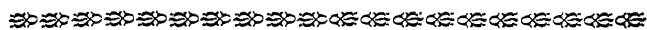
रतनपुरी-नरनाह भो, तब पुनि केसवदास।
राज कियो कछु काल लौं, तहँ सह-सांति-हुलास॥

कर-अधिकारी शाह को, आयो तहँ कर-हेत।
वहै जबै मार्‍यो गयो, निकटहि राज-निकेत॥

कुपित होय तब शाह ने, लियो रतनपुर-राज।
संग रह्यो तउ शाह के, वह सह-सेन-समाज॥

दक्खिन मों सेवा निरखि, भो प्रसन्न पुनि शाह।
मान-सहित बहु भूमि दै, कियो सियापुर-नाह॥

वाको सुत गजसिंह भो, कर्‍यो राज कछु काल।
फतेहसिंह वाको तनय, जनम्यो समय कराल॥
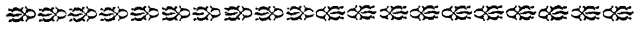
दल मरहट्टन को बढ़्यो , भयो राज अति छीन ।
लूट-मार चहुँदिसि मची , भई प्रजा दुख-दीन ॥

कठिन समय या कुल भये , राजसिंह पुनि भूप ।
राज राखि जिन नै रख्यो , गौरव वंस अनूप ॥

या नरपति-अरविंद ते , लेकै दान-मरंद ।
कविजन-रसिक-मलिंद ने , पायो सदा अनंद ॥

पिता-भक्त तिनके तनय , रतनसिंह युवराज ।
काव्य रच्यो सुंदर सरस , जोरि नेह व्रजराज ॥

भूप भवानीसिंह भो , ताको तनय कृपाल ।
फेरि बहादुर सिंह भो , पुनि शार्दूल नृपाल ॥
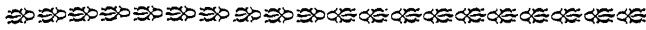
मम पुरुषा सब बिधि बड़े, तिनको सुजस महान।
वा कुल में मेरो जनम, बड़ो मोहिं अभिमान॥

सो पद पुनि मोको दियो, कृपा धारि रघुराय।
सब बिधि मो से तरुन की, वाने कीन सहाय॥

यहाँ काव्य-अनुराग अरु, लखि पुरुषा की रीति।
तिनको अनुगामी बनो, छायो भाव पुनीत॥

नव वय मन नव भाव मय, याते साहस धार।
लग्यो काव्य-रचना करन, निज लघु मति-अनुसार॥

कविता-मग दुरगम गहन, तउ साहस वा ओर।
विनय यही सद कविन सों, छमहु चपलता मोर॥
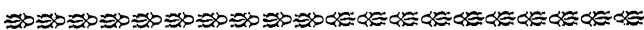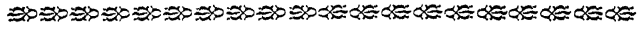
पुरा कवीनां सति साधु काव्ये
वृथा प्रयासं गणयन्ति ये मे ।
निवेदनं तान्प्रति मे विनीत-
मलङ्घनीया मनसः प्रवृत्तिः ॥

कविवर-कविता-कौमुदी , जुगुनू-दुति कृत मोर ।
वाको तजि याको कहा, पीहैं रसिक-चकोर ॥

अब हिंदी नवयौबना, मोहति रसिक प्रबीन ।
पै यह मो मन बावरो, ब्रजभाषा मँह लीन ॥

कविवर ! सद कविता निरखि, उचित न होन निरास ।
यदपि कांति-मय चंद तऊँ, जुगुनू करत प्रकास ॥
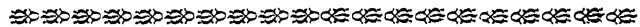
२

अन्योक्ति-विनोद
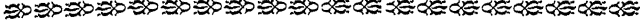
२—अन्योक्ति-विनोद

हंस

आलोकितानि शतशो भुवने सरांसि
पीतानि तत्र मधुराणि पुनः पयांसि
हंसेन वै कवलितानि विसानि तस्य
दृष्टिस्तु मानससरोऽभिमुखी तथैव।

पतंग

स्नेहस्तस्य सदा क्रमेण भवति क्षीणो न संवर्धते
स्वांतः श्यामल एव यद्यपि वहिर्भास्वानसौ भासते
किन्तु त्वं परमोज्ज्वलेन खलु तद्रूपेण हा वंचितः
कृत्वा दीपरतिं पतङ्ग! भवता त्यक्तं वृथा जीवितम्।

बनधिराज

लता विलूना विटपा विनष्टा
निवेदयन्तीभविहारमत्र ।
वनस्य शोभा कथमीदृशी हा !
वनाधिराज ! त्वयि विद्यमाने ॥

मधुप

नित नव मधु चाखत मधुप, तऊँ न पावत तोप ।
मान भूलि बंधन सहत, पान-प्रीति के दोष ॥

अहो मधुप ! चंपक-तजन, मन माँही पन कीन ।
फेरि दीठि डारत उतै, धरम न यहै कुलीन ॥

कहा मधुप ! डोलत फिरत, इन कलियन महँ भूल ।
जो इच्छा मकरंद की, सेवहु बिकसित फूल ॥

यदपि कुसुम केतकि बड़ो, करत न अलि तहँ नाद ।
तहाँ सबै गुन गाइहैं, जहाँ मिलत रस-स्वाद ॥
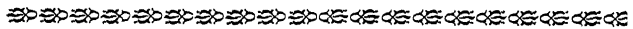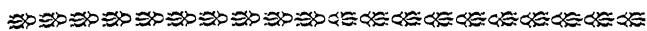
मधुकर ! जदपि गुलाब-वन, नित तू करत विलास ।
फिरि-फिरि चित चाहत तऊँ, अमल कमल को बास ॥

सुमनन के गुन-दोष को, जो न करहि निरधार ।
तो तोको कैसे मधुप ! रसिक गिनहि संसार ॥

गुल्म-तरु-रास महँ सुमन-सुवास जहँ,
करु रे बिलास तहँ आस सरसायगी ।
पंकज-गुलाब-रस चाखि-चाखि लोभ-वस,
गंध पाय नाहिं फँसि बुद्धि अकुलायगी ॥
भूलि जिनि आव इत केतकी है कंटकित,
यापै कहूँ चित्त-वृत्ति नेकु ना लुभायगी ।
है न मकरंद भृंग ! छोड़िदे कुसंग-रंग,
कंटक लगैंगे अंग धूलि धँसि जायगी ॥

धूरि-भर्‍यो मकरंद-विहीन,
प्रसूनन केतकि को गनि लीजै ।
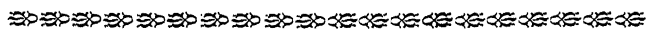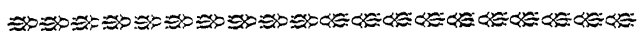
'मोहन' ये नहिं केवरा-मंजरी,
चंपक जानि नहीं तजि दीजै ॥
या जग के भले भोगन भोगिबे,
आदर कै सु घनो रस पीजै ।
भाग्य तैं फूल सरोज मिल्यो,
अवहेलना भूलिकै भौंर ! न कीजै ॥

मंजुल मालती अंबन के रस,
मोद सों चाखत हैं बहु चोखे ।
लोलुप है नित मल्लिका कुंद,
गुलाबन के नव पुष्प अनोखे ॥
सेवती औ कचनार अनार के,
चाखि मरंद मनोरथ पोखे ।
भ्रमत क्यों यों मलिंद ! अहो,
अहिफेन-प्रसून को पंकज-धोखे ॥
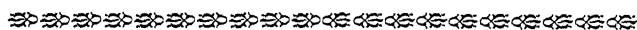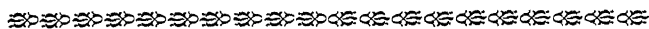
अलि ! काल्हि प्रभात भये जगिकै,
नलिनी-गृह कौ मग तैंने गह्यो ।
रजनी सिगरी सुख सों बसिकै,
रस चाखन मैं लवलीन रह्यो ॥
मधुमत्त भयो इतनो तहँ 'मोहन',
बे सुध ह्वै निसि-बंध सह्यो ।
अब जाय सदा उतही बसो भृंग !
अनंद जहाँ भरपूर लह्यो ॥

भौंर ! जो कंज मिल्यो तुमको,
इहि से सब हैं मकरंद चुचाते ।
गंध मैं तुल्य मनोहरता अरु हैं
द्युति मैं बढ़ि कै नहिं याते ॥
यों जिय जानि तजौ मन मोह को
एकहि एक रहौ रति-राते ।
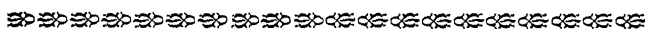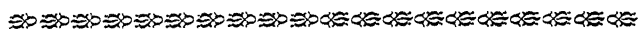
'मोहन' देखिये पात पलास के
तीनि तैं नाहिं कहूँ अधिकाते ॥

पंकज-कुंद-गुलाब-मरंद को,
चाखन मैं नित चित्त लुभायो ।
अंबन की पुनि मंजरी के रस
मैं अति 'मोहन' नेह लगायो ॥
लेन बहार प्रसून प्रफुल्लित
कुंज निकुंजन मैं मन लायो ।
वै मकरंद मनोहर त्यागि कै
भूलि कितै अलि ! चंपक आयो ॥

सर्प

यदि बिधि तूठै उरग पै, दै वाको पय-पान ।
पै किमि वाके बदन को, करै सुधा की खान ॥
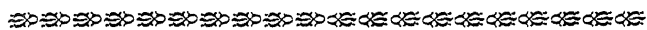
पिपीलिका

पंख पाय चींटी अरी ! उड़ि-उड़ि क्यों इतराय ।
गिरिहैं पर, मिटिहै उमंग , जैहैं तुहिं खग खाय ।।

पलाश

होय अपत सब बिधि निपट , रच्छक-दलन दुराय ।
फिरि किंसुक ! यों फूलिबो , मोहिं न तनिक सुहाय ।।

पान

नाग-लता ! खेद न करौ , लखि कुसुमिति तरु कुंज ।
रुचिकर इन सब सुमन तैं, हीन न तव दल पुंज ।।

दीपक

नेह-बिनासक उर-मलिन , उज्वल उपरि अपार ।
सलभ ! दीप तैं प्रीति करि , क्यों जरि होवत छार ।।
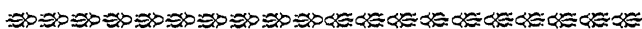
चन्द्र

नहि विषाद की बात जो , नलिनी भई उदास ।
कुमुदिनि-पति ! तुहिं लखि जबै, कुमुदिनि हिये हुलास ॥

गज-बाल

जो पै शत्रु-पुत्र तौहूँ सावक निबल जानि,
पंचानन मारै नाहिं चित नित राखियो ।
कोमल बिपिन-वृच्छ भच्छन करन देत ,
याको उपकार मन दूर जिन न्हाखियो ॥
होयगो तरुन जब 'मोहन' तू बाल गज !
ताके अनुकूल होय सबै रस चाखियो ।
तजौ जिन सीख मेरी नातौ तव प्रान जैहैं ,
रंच उन्मत्त ह्वैबो नाहिं अभिलाखियो ॥

रत्नाकर

रतन-खान निज दान मैं , याचक को बिसरचो न ।
यदपि खार सागर तऊ , तव ढिंग आवै क्यों न ॥
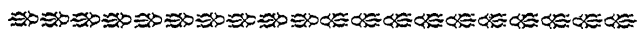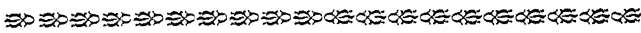
सागर! तू निज तनय लखि, क्यों एतो इतराय।
रतनाकर गौरव कहा, दोषाकर-सुत पाय॥

मेघ

अहो स्याम घन! पातकी, भयो घात की रास।
बरसत बूँद न स्वातिकी, दुरि न चातकी-प्यास॥

असित बरन अति निज निरखि, सोंच न करु घनश्याम!
सरस-हृदयता करत तुव, स्यामलता छबि-धाम॥

तू जग अति दानी जलद! बरसत सम सब ठाम।
जो विवेक धरिहै कछुक, बढ़िहै जस अभिराम॥

आस धरे सबही तुम्हरी,
छितिपाल खरे, कहा और कहीजै?
होय असीम उदार पयोद!
प्रजाजन को न वृथा दुख दीजै।
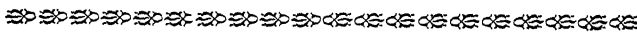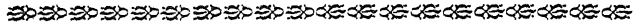
सूखत हा! बरषा बिन धान,
दया करि वेगि व्यथा हरि लीजै ॥
पौन तैं प्रेरित ह्वै जगजीवन,
कीरति नाहिं कलंकित कीजै ।

गावो गन चातक ना मेघन सघन देखि,
पूरे रङ्ग-ढङ्ग लखि हियरा तरसि है।
कुहू-कुहू मुरवा पुकारौ जिन मोद मानि,
बरषा-उमङ्ग योंहीं उर मैं झरसि है ॥
बादर-चढ़ाई लखि दादुर दुकारो काहि,
बारि-बूँद रंचक हू तन ना परसि हैं ।
भूलो मत—भूलो मत, धोखे की अवाजैं सुनि,
घने घन गाजे तामैं बाजे ही बरसि हैं ॥

सिंह

हरि फारत॰ गज देखि यों, जंबुक! क्यों अनखात ?
बिधि नै मोहिं क्यों नहिं दियो, एतो बल बिच गात ॥
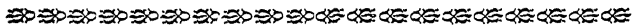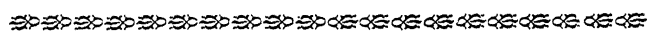
सांत रहत तृन-दल चरत, भूलि न चहत स्वराज।
फिरि काहे इन मृगन को, तू मारत मृगराज!

आज बनराज मृगराज को मरन सुनि,
काहे ये मतङ्ग गाजैं, गरब को जोर है।
काहे ये अनंदित है भरत कुरङ्ग फाल,
सूकर को वृंद काहे डोलै चहुँ ओर है॥
काहे ये सुचित भये चीते अति मोद-भरें,
जंबुकन काहे फेरि माच्यो यह सोर है।
इनको उचित नाहिं भूलि यों निसंक हैबो,
जीवित बिपिन जौ लौं केसरी-किसोर है॥

जा ने बहु कुंभी मारि कुंभन को फारि-फारि,
मोतिन तें कीनो बन मंडित महान है।
दंती-भ्रम धारि स्याम पाहन प्रचंडन को,
नखन प्रहारि चूर कीन्हे थान-थान है॥
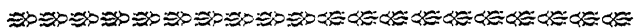
जा को सुनि घोष भयभीत ह्वै सकल जीव ,
कानन अपार कीनों 'मोहन' पयान है ।
बिधि की बिचित्र गति ताही मृगराज हू को ,
जंबुक पछारि हा ! हा !! धारे अभिमान है ॥

बीणा

श्रवन परत जाकी ध्वनी , भूलत पसु तन-भान ।
जो सुनि मूढ़ न रीझिहै , चूक न बीन सुजान !

गजमोती

गज-मुक्ता-फल ! करु न मद , निज अमोलता जान ।
तुव कारन पितु-द्विरद के , गये बिपिन बिच प्रान ॥

गयन्द

बन सुंदर रम्य सरोवर पाय,
बिलोचन पै पट दाप परे ।
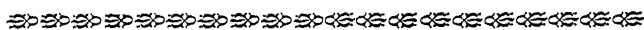
तरु केलि रु एलि लवंगलता,
सुभ सारस तोरि-मरोरि धरे ॥
गुन-दोष को रंच न भान भयो,
सब के करुना तजि प्रान हरे ।
मति-मंद गयंद ! कुबंध परे,
अब क्यों खल बादि विषाद करे ॥

शुक

सुवा ! सुपारी फोरिबो, यह तुव वृथा प्रयास ।
सार हाथ ऐहै नहीं, ह्वै है अंत उदास ॥

कुटज

मधुपहिं सोभा तुच्छ निज, कुटज ! दिखावत काहि ?
सुमन-सिरोमनि कमल जिहि, निस-दिन राखत चाहि ॥

काग

काग ! कलंकी कूर, किमि जाने हंसन-सुगुन ।
मानत औगुन-पूर, छीर-नीर-सोधन-करन ॥
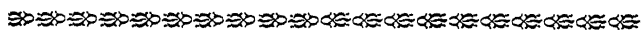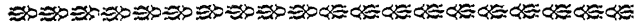
उलूक

ऐ उलूक ! इन काग को , क्यों चाहत दुख दैन ।
तुहू न रैहै चैन मैं , बीते पै यह रैन ॥

मृग

मधुर बीन-बिच-लीन करि , मृग मारत सर साध ।
यों सु रसिक-जीवन-हरन , नहिं सुहात मोंहि ब्याध !

गाय

सारे महि मंडल पै 'मोहन' सिसिर-बीच ,
बरस्यो विशेष बारि बादर छई-छई ।
भूमि यह ठौर-ठौर तृन-नव-संकुलित ,
ताको तू निहारि भोरी अनंद-मई-मई ॥
उपज महावट की पावस की है न यातैं ,
बेगि ही बिलाय जैहै हरित भई-भई ।
सूखी-सूखी घास तैं न मोरु मुख ऐरी गाय !
नातौ दुख पैहै जैहै उमँग नई-नई ॥

पिक
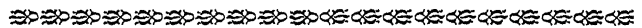
पल्लव सघन छाँह सीतल सुखद छोड़ि ,
छोटे-छोटे पातवारो ताको ये सुहावै क्यों ?
सुंदर सुगंध-मय मंजरी मधुर तजि ,
करुवे कुसुम कहो वाके मन भावै क्यों ?
मीठे-मीठे मंजु फल 'मोहन' सुरस तजि ,
कुरस निबौरी तुच्छ चाखे चित लावै क्यों ?
आम पै सहज पिक पावत प्रमोद जब ,
काक ते सहन कष्ट नीम ढिंग जावै क्यों ?

हे पिक ! तजि या अंब कौ , भजि जाओ थल आन ।
यहाँ प्रान बचिहैं नहीं , मच्यो काग-घमसान ॥

अम्ब

तपन-जरी जीवित करी , देय मधुर फल-सार ।
कोकिल ! का विधि बिसरिहै , अंब बड़ो उपकार ॥
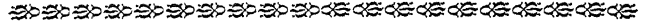
बबूल

माली ! नित सींचत कहा , सेवत वृच्छ बबूर ?
सेवा-फल तू पायहै , कंटक ही भरपूर ॥

बन

जिहि बन सघन प्रचंड मैं , केहरि रहैं अनेक ।
हाय ! हाय !! तिहि थल अबै , लख्यो न जंबुक एक ॥
जा बन को गज-पति तज्यो , मृग-पति जानि निवास ।
निरभय अब तामैं अहो , जंबुक करत बिलास ॥

गूलर

जग बिच तरुवर अधिकतर , फूलि प्रथम फल देत ।
गूलर ! तव गौरव यहै , बिन फूले फल देत ॥

बट

नहीं सुमन नहिं रुचिर फल , काठहुँ निपट निकाम ।
सरन देत पर श्रमित को , याही ते बर नाम ॥
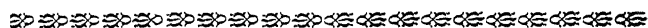
नागफनी

नागफनी ! तू सूल-मय , राखत विषधर पास ।
ताँपै फल लघु कंटकित , कौन करै तव आस ॥

एला-लता

सोंच न करु एला-लता ! उँट-अनादर मान ।
गाहक तव सुभ गुनन के , अगनित गुनी जहान ॥

गुलाब

मोहक महान याके सुखमा प्रसूनन की ,
मंजु कुंज-बागन की सोभा बृद्धि करनी ।
'मोहन' मिलिंदन को सुखद मरंद त्योंही ,
खिलनि बसंत बीच वाकी मोद-भरनी ॥
अतर अनूप वाको आदर करै न कौन ,
सुंदर सुगंध सदा लोक-चित्त-हरनी ।
काँटन को दोष एक सुगुन अनेक याते ,
गौरव गुलाब क्यों न पावै बीच धरनी ॥
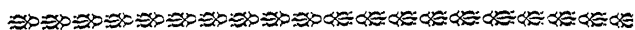
कमल

पंकज क्यों मकरंद ! तू , देत न मधुपन आज ।
हिम तैं तू जरिहै जबै , ह्वै है सब बेकाज ।।

तेरे गुन भूरि सुनि मित मों मधुप मुख,
छोरचो घर आज भये आदित उदित है ।
याही आस धारि चल्यो मीठो मधु पीहौं बेगि,
आनि हौं कछुक गेह बालक के हित है ।।
नीठि-नीठि साँझ समैं पहुच्यों हौं तेरे ढिग,
'मोहन' इतै पै मोहिं कीनो तैं दुखित है ।
एरे अरविंद ! तू न देत मकरंद जो पै,
मूँदि कैद करिबो यों तोको ना उचित है ।।

अमल सुबास-जुत केतें अरविंद-दल,
प्रखर तुषार जारे चहूँ दिस दौरि के ।
मंजुल मृनालन को खाये आय हंस-गन,
करुना बिसारि केते तामरस तोरि कै ।।

केते घोर ग्रीषम में ताल-जल सूखत ही,
दीन छीन लोप भये जीवन को छोरि कै।
रही-सही सोभा सर रहे-सहे कंजन को,
मत्त ये मतंग हा! हा!! तोरत मरोरि कै॥

कंजकली

मकरंद मनोहर जे बहु दै,
परिपूरन पौन सुवास कियो।
उन कंजन की न व्यथा कछु है,
जिनको रस दीन अलीन पियो॥
मन भौंरन आस निरास अबै,
इनने नहिं नैकु बिकास लियो।
जरि छार भई हिम तैं कलिका,
लखि पावत है अति खेद हियो॥
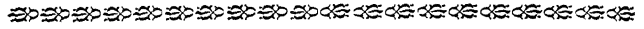
सरोवर

ग्रीषम-निरस-ताल तलफत पंक मीन,
आसा धरि बैन कहै दादुर-समाज को ।
यदपि सलिल हीन 'मोहन' तड़ाग अब,
काल पाय पूरि दैहैं मेघ सरराज को ॥
आह भरि बोल्यो एक सुनिकै बचन झख,
नीर तैं भरन याको प्रान-प्रद आज को ।
तोको जन भूनि खैहैं काग मम जीव लैहैं,
सर को सरस ह्वैबो फेरि कौन काज को ॥

मराल

मंजु-मंजु मोती अरु कमल मृनाल आदि,
आनँद तैं कूजि जहाँ खाये तैं निसंक है ।
चोंथे चारु अंग जाके चरन तैं चापि-चापि,
तौहूँ नहिं तोपै नेकु भई भौंह बंक है ॥
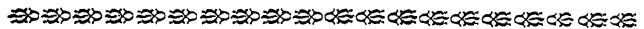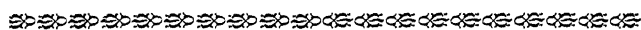
बनिता बिलास कीन बसिकै मराल जहँ,
ग्रीषम मैं ताल यह भयो अब रंक है।
पूरब सरोवर! सनेह को न त्याग जोग,
'मोहन' कृतघ्नता को लागत कलंक है॥

यह सरसी, नहिं मानसर, यहाँ न जलज-निवास।
सुनु मराल! सो थल यहै, बक जहँ करत निवास॥

३

शृंगार-विनोद

श्रृंगार-विनोद

१—दोहा-दूर्बादल
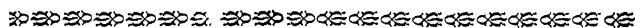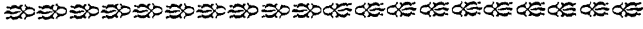
कंबु कंठ खंजन नयन, बार भौंर तन गोर।
अधर बिंब मुख चंद-सम, नागिनि अलक-मरोर ॥ १ ॥

धन्य पद्मिनी जासु नित, अचल नेह रबि माहिं।
जाको लखि बिकसित सखी, बिन देखे मुरझाहिं ॥ २ ॥

गति गयंद केहरी कटि, मंद हँसनि मुख इंदु।
नयन उभय सोभित भये, द्वै दल मनु अरविंदु ॥ ३ ॥

पूछत भीरु बिहाल, अंग रोग उपज्यो कहा।
छीन लंक अरु चाल, उर नितंब भारी लगत ॥ ४ ॥

१—सुन्दरी-सौंदर्य। २—स्वकीया। ३—मुग्धा। ४—अज्ञातयोबना।
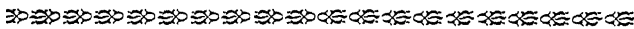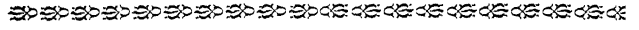
बिकल होय बाला भजी , गृह में लखि ब्रजराज ।
डरिकै ज्यों करिनी भजत , बन में लखि बनराज ॥ ५ ॥

डरति लजति पति पै चली , सखी सिखावन-लाग ।
जात चल्यो मृगराज पै , मंद-मंद ज्यों नाग ॥ ६ ॥

पिय तन-दुति लखि तिय-बदन, बिकसति बिच पट स्याम।
जलद-मध्य चपला मनो , चमकत है अभिराम ॥ ७ ॥

सरद-रैनि स्यामा सुभग , सोवति माधौ-संग ।
उर उछाह लिपटति सुघर , राजत अंग अनंग ॥ ८ ॥

सुबरन तकि सुबरन लखै , पंकज लखि निज नैन ।
पेखि कुंभ निरखति कुचनि , पिक-धुनि सुनि मुख-बैन ॥ ९ ॥

५—नवोढ़ा । ६—विश्रब्धनवोढ़ा । ७—मध्या ।
८—प्रौढ़ा । ९—ज्ञातयोबना ।
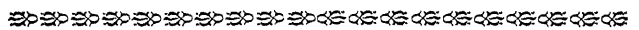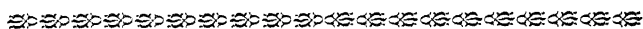
नाह रिझावन हौं चहौं, रति में कहि प्रिय बैन।
पै सखि ! यह कैसे बनै, तन सुधि जबै रहै न ॥ १०॥

मलयाचल-चन्दन सदा, पन्नग जो लपटाय।
सो किमि जावै नीम-ढिग, अचरज मोंहि लखाय ॥ ११॥

जिन कजरारे नैन ने, कजरारो मुख कीन।
तिनपै बेगि सिधाइये, मोहन ! परम प्रवीन ॥ १२॥

चुप साधे राधे प्रिये ! इमि किमि बैठी आज।
सिसकति यह बोली बचन, अनुकंपा ब्रजराज ॥ १३॥

पद पखारि मृदु बैन तैं, आदर कीन्हों पूर।
ज्यों पिय आवत तिय निकट, त्यों हँसि भाजति दूर ॥ १४॥

१०—आनंद-संमोहिता। ११—मध्या धीरा। १२—मध्या अधीरा।
१३—मध्या धीरा धीरा। १४—प्रौढ़ा धीरा।
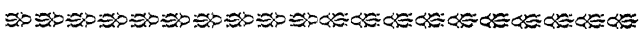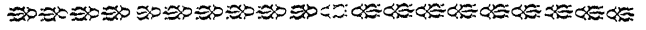
रह्यो मुदित जो पिक सदा, अंब-मंजरी खाय।
भूलि निबौरी चखन कौ, सो अब क्यों ललचाय॥१५॥

चूक भई मोतैं नहीं, संक न कछु उर धार।
भौंह बंक करि मोहि क्यों, देत सुमन की मार॥१६॥

मै ना सखी निहारिहौं, इन नैनन ब्रज-चंद।
मम हिय अति डरपत सदा, फँसि जैहौं छलछंद॥१७॥

ब्रज-बनिता! छलबल करौ, सफल होत ना एक।
नाह-नेह-डोरी-बँधे, कित को डुलै न नेक॥१८॥

निसि मैं जिमि कमल न लसत, कुमुद न दिवस-उदोत।
तिमि तव मुख यह मान तैं, सोभित नेकु न होत॥१९॥

१५—प्रौढ़ा धीरा। १६—प्रौढ़ा अधीरा। १७—भविष्य गुप्ता। १८—प्रेमगर्विता। १९—मानवती।
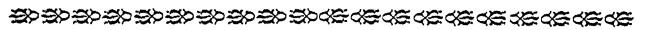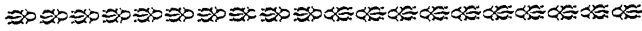
जब तैं मोहन-नैन तैं, जुरे निगोड़े नैन।
दरस बिना धीर न धरत, निसि-दिन रहत अचैन ॥२०॥

घुमड़ी नभ उमड़ी घटा, चपला-चमक अतंत।
बारि-बूँद बरसत घनी, बिरहिन-बिथा अनंत ॥२१॥

कहा कहौं कहत न बनै, नहीं कहन के जोग।
सो जानत मो उर बिथा, जा नै सह्यो वियोग ॥२२॥

तव मूरति की लटक नित, अटकि रही इन नैन।
तिहि ढूँढ़न भटकत फिरौं, पटकि सीस दिन-रैन ॥२३॥

सकुन-गान स्रुति सूल सों, लगति सूल से फूल।
मिंत बिना सुख-मूल सब, भये आज प्रतिकूल ॥२४॥

२०—ऊढ़ा।
२१—मध्या प्रोषितपतिका।
२२—प्रौढ़ा प्रोषितपतिका।
२३—परकीया प्रोषितपतिका।
२४—पुनश्च।
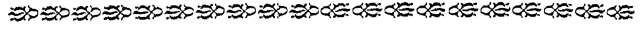
आयो ना रितुराज पै, है वह दल जमराज ।
सुमन सस्त्र सों मारिहै, बिना मित्र ब्रजराज ॥२५॥

मेघराज ! तव लौं सदा, बरस गरजि करि रोस ।
द्रव्यराज !* जौलौं नहीं, जो बरसत निसि-द्योस ॥२६॥

कलिका जदपि गुलाब की, सरस नहीं दरसाय ।
तउ न सेवती सेइबो, मधुकर ! उचित लखाय ॥२७॥

नखछत लौं रति चिन्ह को, पी के तन लखि प्रात ।
नैनन टपकत नीर है, मुख तैं कढ़त न बात ॥२८॥

तिया-रूप-दृढ़-जाल गहि, सरस बचन-मय-बीन ।
निसि तव छबि-हरिनी हनी, मनमथ-बधिक प्रबीन ॥२९॥

२५–गणिका प्रोषितपतिका । २६–गणिका प्रोषितपतिका ।
२७–मुग्धा खण्डिता । २८–मध्या खंण्डिता ।
२९–प्रौढ़ा खण्डिता ।
* द्रव्यका मालिक ।
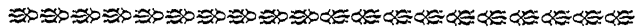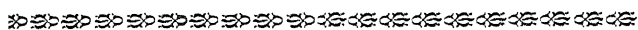
नवला ! सखी-समाज में , लाज रही तन छाय ।
नाह कहन नाहीं कियो , अब तू क्यों कुम्हिलाय ? ॥३०॥

चढ़ि सु प्रीति-नौका कठिन , छेह दई कुलकान ।
कोप-उदधि बोरत लगी , बार न मोहिं अजान ॥३१॥

सखी ! गई हौं सदन में , भई न पिय सों भेंट ।
दीपक की दीपति लगी , मनौ घाम दिन जेठ ॥३२॥

केलि-भवन को गवन किय , मिले धवन वहि धाम ।
पवन लगे तिय दवन जिमि , हवन भयो सुख काम ॥३३॥

पेखि सेज हितु-बिनु भयो , प्रभा-रहित मुखचंद ।
जैसे व्याकुल भृंग लखि , कंज हीन-मकरंद ॥३४॥

३०–मुग्धा कलहांतरिता ।
३१–परकीया कलहांतरिता ।
३२–प्रौढ़ा विप्रलब्धा ।
३३–प्रौढ़ा विप्रलब्धा ।
३४–परकीया विप्रलब्धा ।
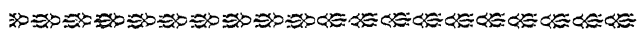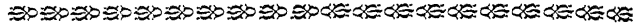
बनिता बहु बसु-आस धरि , पहुँची आलय जाय ।
बिस्व-विदिति बसुपति बिना , नलिनी ज्यों मुरझाय ॥३५॥

बैठी सखिन समूह मैं , मन सोंचत मुख मौन ।
कौन खेल मैं लगि रहे , आये नाह अजौं न ॥३६॥

साँझ-समैं नियरात ज्यों , सकल कमल मुरझात ।
अजब सखी ! तव मुख-कमल , विकसित अधिक लखात ।३७॥

राधे कलिका कमल की , अलि है रसिक मुरार ।
मधु-सुबास-बिन बस भये , अचरज होत अपार ॥३८॥

ब्याहत ही राधे अजब , कला-कुसलता लीन ।
या ते वा चितचोर को , चित चोरयो परबीन ॥३९॥

३५—गणिका विप्रलब्धा ।
३६—मुग्धा उत्कंठिता ।
३७—मध्या बासकसज्जा ।
३८—मुग्धा स्वाधीनपतिका ।
३९—मुग्धा स्वाधीन पतिका ।
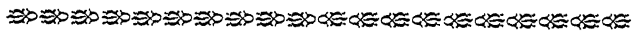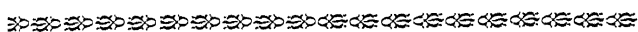
जो कछु लघुता करत हौ, सो असीम है ईस !
फिरि यह मो पायन परन, अति अनुचित ब्रजधीस ।।४०।।

नलिनी को रस चाखि कै, बिक्यो मधुप गुन-गेह ।
बास मालती ढिग जदपि, तदपि न तजत सनेह ।।४१।।

सुमन-माल राखि न सकौं, आलि ! सकौं न उतार ।
अलि रीझै हरि खीझिहैं, पग-पग होत बिचार ।।४२।।

मेघ नये बुँदिया नई, नव तृन नये वितान ।
तजत नवेली नारि को, क्यों नव नाह सुजान ।।४३।।

लतिका विटपालंबिनी, जरत सीत में सोय ।
तुम बिन कैसे सिसिर में, मों बचिबो हित होय ?।।४४।।

४०—प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका । ४१—परकीया स्वाधीनपतिका ।
४२—मध्या अभिसारिका । ४३—मुग्धा प्रवत्स्यत्पतिका ।
४४—परकीया प्रवत्स्यत्पतिका ।
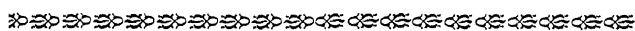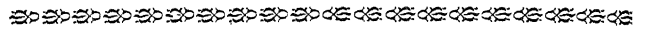
चलि रुकि तिय पिय को लखति, उरझी मनमथ-लाज ।
करनी मनु लंगर-बँधी, निरखि रही गजराज ॥४५॥

प्रियतम को पेख्यो चहैं, प्रेम-पियासे नैन ।
आँसु निगोरे चहत हैं, औसर पै दुख दैन ॥४६॥

पिय-आगम लखि कै भई, स्यामा मुदित अनंत ।
ज्यों हुलसति है कोकिला, आवत देखि बसंत ॥४७॥

सघन धनी को आगमन, लखि तिय करति उछाह ।
होति मयूरी मुदित जिमि, पेखि सजल जल-बाह ॥४८॥

जे तुमको दोषी कहत, ते नहिं मोहिं सुहात ।
तुम इन राधा-नयन मैं, स्याम सदा अवदात ॥४९॥

४५—मध्या आगतपतिका । ४६—प्रौढ़ा आगतपतिका ।
४७—प्रौढ़ा आगतपतिका । ४८—गणिका आगतपतिका ।
४९—उत्तमा ।
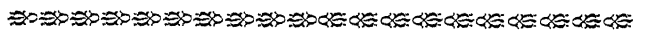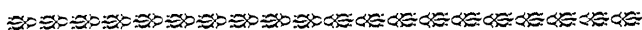
नाह-दोष सुनि मान तैं, मन को कर्‌यो कठोर।
चंद्रकांत सो होत पै, वा मुखचंद्र निहोर ॥५०॥

भ्राज़त भाल विसाल, कमल नयन चितवनि कुटिल।
ऐसो रूप गुपाल, मोहित ब्रज-तिय जेहि निरखि ॥५१॥

जदुपति सब महिलान-संग, रच्यो मनोहर फाग।
बरसायो इमि रंग को, इक न रही बिन राग ॥५२॥

मो तैं कछु अपराध नहिं, बन्यो भूलि सुख-दान।
बंक भौंह तुव लसति मनु, पूरन खिंची कमान ॥५३॥

नैन अच्छ ह्वै मच्छ सम, देत दच्छ उर चोट।
इनके लच्छ प्रतच्छ तजि, चाहौं पच्छन-ओट ॥५४॥

५०—मध्यमा। ५१—नायक। ५२—दक्षिण नायक।
५३—शठ नायक। ५४—उपपति।
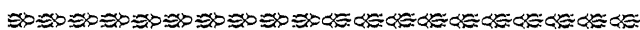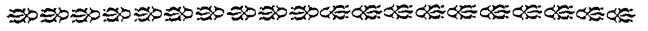
मंद हँसनि चितवनि कुटिल , रसना-नूपुर-नाद ।
हर्‌यो चित्त यों लाल को , कछु ना लगत सवाद ॥५५॥

हाव, भाव, तिरछे नयन , चित मेरो बस कीन ।
किितक बात बसु देन की , असु जब तब आधीन ॥५६॥

नवरस-पूरित पदमिनी , तासो वृथा रिसाय ।
चंपक-लतिका सेइबो , क्यों तुहि भौंर सुहाय ?॥५७॥

कमल विमल तैं पूजिबो , सिव को अधिक सोहात ।
जैहौं तिनको ताल पै , लेन अकेलो प्रात ॥५८॥

मो प्यारी मुख को नहीं , तूने लख्यो चकोर !
यातैं तू इक-टक लखै , चंद-कलंकी-ओर ॥५९॥

५५—उपपति । ५६—वैशिक । ५७—मानी ।
५८—वाक्यचतुर नायक । ५९—प्रोषित नायक ।
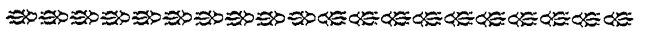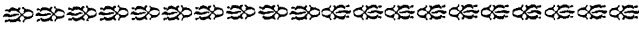
रति-मद्हर-वृषभानुजा , मूठि गुलालहि संग ।
भेट कियो ब्रजराज को , चंचल चित्त-मतंग ॥६०॥

फूलत कहा सरोज ! तू , निज छबि अतुलित जान ।
मम प्यारी मुख-कंज लखि , मिटि जैहै अभिमान ॥६१॥

अंक-युक्त ससधर जबै , ताप-हरन परबीन ।
क्यों न करै फिर बिधु-बदन , अंक-हीन दुख छीन ॥६२॥

हास-युक्त तरुनी-बदन , अधर रदन-छबि-लीन ।
मनौं अरुन द्वै मनिन महँ , जलज-लरी जरि दीन ॥६३॥

बल बाढ़्यो रितुपति-पवन , पुहुप कीन बलवीर ।
मदन-उरग उर-बिच डसत , लाँघि उरग तिय-धीर ॥६४॥

झूलत जोर हिंडोर जब , चढ़ि अंबर-बिच जायँ ।
तड़ित-मुदिर-महँ मिलि रहे , लली-लाल न लखायँ ॥६५॥
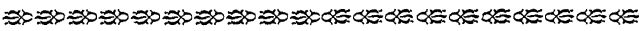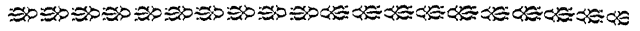
कर-लाघव विधि नैं लह्यो , रचि कै प्रथम निसेस ।
यातैं यह तव बिधु-बदन , बिधु तैं बन्यो बिसेस ॥६६॥

करत निछावरि ए सखी ! लागत लाज अपार ।
प्रान निछावरि करि चुको , अब सब और असार ॥६७॥

जानति हरि की बाँसुरी , उर-छेदन की पीर ।
फिरि तू मो उर छेदिबे , हा ! क्यों होत अधीर ॥६८॥

'मोहन' के मुख लागि वह , बिसरि गई तुहि बात ।
यातैं तू निरदइ भई , करन लगी यों घात ॥६९॥

तपन-तपित अतिसय व्यथित , काट्यो दिवस कराल ।
दोषाकर तेहिं पर उयो , बिरहिन कौन हवाल ? ॥७०॥

छार करत उर अति बिरह , तन जारत रवि-ज्वाल ।
तरुनि दहन किमि सहि सकै , ग्रीषम उभय-कराल ॥७१॥
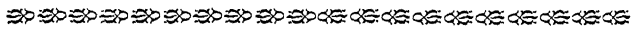
सुबरन ! जो सुबरन चहत , सम प्यारी के अंग ।
तपहिं तपे बिन पाइहौ , किमि वह सुंदर रंग ॥७२॥

डारत रंग कुसुंभ नहिं , राधे हरि पै आय ।
गेरति है अनुराग-रँग , जो उर बढ़ि उफनाय ॥७३॥

कमल-बदनि ! किमि चलि अभय, निरखत बाग बहार ।
मधुकर तव मुख भूमि है, पंकज-भ्रम चित धार ॥७४॥
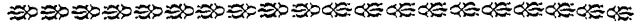
२—सवैया-सुधा-स्रोत

या अति कोमल अङ्ग सुरङ्ग तैं,
चंपक की दुति दीन लखावै ।
या तिरछी स-विलास चितौनि को,
पेखि सुधी-गन की सुधि जावै ॥
या चितचोर मनोहर हास तैं,
'मोहन' क्यों न सुधा सरमावै ।
या मनमोहनी मूरति को लखि,
क्यों कर काहुको नैन अघावै ॥ १ ॥

अङ्ग उरोज-नितंब बढ़े,
मुसकानि मनोहर मंद सुहाई ।

१—नायिका-सौंदर्य ।
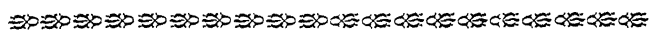
कुंजर-हंस सों छीनि लई गति,
　　भौंह कमान सों लीन्ह बँकाई ॥
केहरी की कटि सी कटि छीन,
　　सु बोलनि कोकिल-बानि लजाई ।
जोबन-राज के राज भये,
　　मुख-दीपति और की और ही छाई ॥ २ ॥

साँझ सहेली सबै मिलि बाल को,
　　केलि के मंदिर ठेलि कै लाईं ।
कान्हर आइ अचानक ताहि,
　　गही भयभीत तबै थहराई ॥
छूटिबो रंच बनै न तहाँ,
　　नवला घबराइ घनी दुख पाई ।
'मोहन' दीन मनौं चिरिया,
　　चिरीमार के फंद फँसी अकुलाई ॥ ३ ॥

२—मुग्धा ।　　३—नवोढ़ा ।
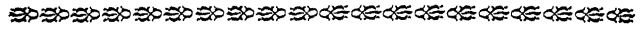
अधरात को 'मोहन' सासु जबै,
करिकै गृह-काज को सोइ गई ।
सजि रम्य सिंगार सखीगन नै,
तिय को कहि कै पिय पै पठई ।।
जब श्याम नैं अङ्ग लगाय लई,
थहराइ उठी वह लाज-मई ।
सुन कै चरनायुध बोल तबै,
कछु ताके हिये परतीति भई ।। ४ ।।

क्यों तुम आतुर होत हौ नाथ !
सखीन को दूरि सिधावन दीजै ।
पीतम ! कोऊ नगीच तौ है नहीं,
बाहर जाइकै देखन दीजै ।।
'मोहन' आपु दया करिकै मोहि,
भौंन केवाँरन झापन दीजै ।

४-५—विश्रब्ध नवोढ़ा ।
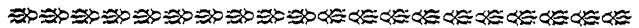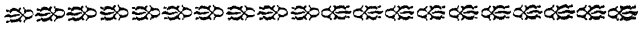
छोड़िये-छोड़िये मोहि हहा !
यह दीपक जोति बुझावन दीजै ॥ ५ ॥

चुंबन औ परिरंभन तैं पियको
कल केलि कलान रिझाती ।
'मोहन' राति उमंगन तैं रति—
रङ्ग-प्रसङ्ग रही मदमाती ॥
मोतिन-माल छिपावति है अरु,
दौरि बढ़ावति दीपक-बाती ।
चीर सों मूँदि किंवार-दराजहिं,
बीन बजाइ बिहागहि गाती ॥ ६ ॥

पंकज-कुंद-गुलाब-मरंद को,
चाखन मैं नित चित्त लुभायो ।
अंबन की पुनि मंजरी के रस,
मैं अति 'मोहन' नेह लगायो ॥

६—प्रौढ़ा रतिप्रीता ।
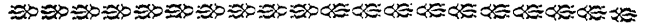
लेन प्रसून-बहार प्रफुल्लित,
कुंज निकुंजन मैं मन लायो।
वै मकरंद मनोहर त्यागि कै,
भूलि कितै अलि! चंपक आयो ॥ ७ ॥

अलि! काल्हि प्रभात भये जगिकै,
नलिनी-गृह कौ मग तैनै गह्यो।
रजनी सिगरी सुख सों बसिकै,
रस-चाखन मैं लवलीन रह्यो ॥
मधुमत्त भयो इतनो तहँ 'मोहन',
बे-सुध ह्वै निसि-बंध सह्यो।
अब जाय सदा उतही बसौ भृंग!
अनंद जहाँ भरपूर लह्यो ॥ ८ ॥

मंजुल मालती-अंबन के रस,
मोद सों चाखत हैं बहु चोखे।

७—मध्या धीरा। ८—मध्या अधीरा।
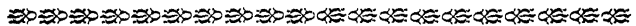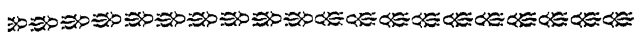
लोलुप है नित मल्लिका-कुंद—
गुलाबन के नव पुष्प अनोखे ॥
सेवती औ कचनार-अनार के,
चाखि मरंद मनोरथ पोखे ।
चूमत क्यों यों मलिंद ! अहो,
अहिफेन-प्रसून को पंकज धोखे ॥ ६ ॥

चंपक-अंब-कदंबन के जमुना तट
सोभित फूल नये हैं ।
त्यों तिनपै चितचोर अनूपम,
गुंजत भृंगन-वृंद छये हैं ॥
'मोहन' जानि परै नहिं क्यों तुव,
यों ही व्यथातुर प्रान भये हैं ।
ऊँख के खेत उपारि लिये पर,
कुंजन-पुंज तौ नाहिं गये हैं ॥१०॥

९—प्रौढ़ा धीरा । १०—अनुशयना ।
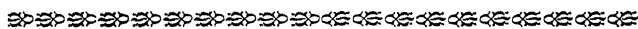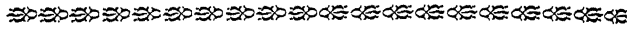
कामिनी उच्च अटा पर जाय कै,
देखत बाग-बहार नई है।
और सखीन दिखावति जो छबि
फूलन की चहुँ ओर छई है॥
पंकज को कर लै उत आवत,
'मोहन' पै जब दीठि गई है।
कंज बिलोकि कै कंजमुखी सित—
कंज-मुखी छिन माँहि भई है॥११॥

ब्याहि कै नाह विदेस गये,
तबते दुलही मुख रंग गयो है।
पूछति बारहि-बार सखी,
सजनी तुव क्यों तन पीत भयो है॥
नाहिं बिथा कहि आवत 'मोहन',
यातैं नवेली ने मौन लयो है।

११—तृतीय अनुशयना।
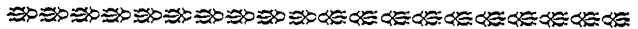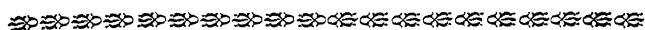
क्योंकरि हाल बताय सकै तिय,
अङ्ग लग्यो यह रोग नयो है ॥१२॥

'मोहन' गेह तज्यो जबतें,
तबते नवला कहूँ क्योंहू न खावै ?
टेरि थकी सब ही सखियाँ,
उत जाय कै क्यों नहीं खेल रचावै ?
प्रीतम-प्रीति अनोखी लखी,
कहा और को नाह बिदेस न जावै ?
यों कहि सासु निगोड़ी हहा !
नित काहे जरे पर नोन लगावै ?॥१३॥

बृच्छ-लता बन-बागन के नव,
पल्लव-फूलन सों सरसावैं ।
'मोहन' मंजुल गुंजत मत्त,
मलिंद प्रसूनन पै मँडरावैं ॥

१२-१३—मुग्धा प्रोषितपतिका ।
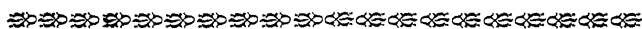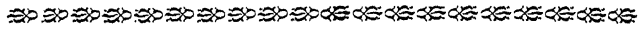
चातक-कीर-कपोत-कलापी,
प्रमोद-भरे मधुरी धुनि गावैं।
कौन से पाप सों ऐसे समै,
करतार! कहौ बिरही दुख पावैं ? ॥१४॥

बहि सीत, सुगंधित, मंद समीर,
सँजोगी हिये सरसावत हैं।
घने बौर रसालन छाय गये,
कल कोकिल 'मोहन' गावत हैं॥
सजनी नव पल्लव-फूलन सों,
लतिका-तरु-वृंद सुहावत हैं।
रितुराज चहूँ दिसि या बिधि फैलि,
बियोगिनी को कलपावत हैं॥१५॥

सजनी लतिका अरु पादप पै,
नव कोमल पल्लव आय गए।

१४-१५—मध्या प्रोषितपतिका।
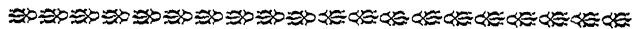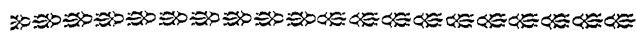
मधुरी धुनि कोकिल गावत हैं,
घन बौर रसालन छाय गए ॥
बहै सीत, सुगंधित, मंद समीर,
सँजोगी हिये सरसाय गए ।
'मन मोहन' फैलि रह्यो रितुराज,
बियोगिन के हिय हाय ! गए ॥ १६ ॥

ना उत बौरत अंब कहा, कहा
मंजुल गान बिहंग न गावत ?
'मोहन' सीतल, मंद, सुगंधित
पौन कहा न तहाँ सरसावत ?
का मद माते मिलिंद उतै बन—
बागन मैं रव नाहिं सुनावत ?
आयो न कंत-सँदेस अजौं सखि,
का उहि देस बसंत न आवत ? ॥ १७ ॥

१६—मध्या प्रोषितपतिका । १७—प्रौढ़ा प्रोषितपतिका ।
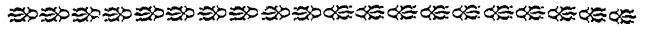
सखि ! नाहक क्यों नलिनी-दल को,
अति सीतल जानि बिछौनो बिछावै ?
अरु क्यों गुनकारी बिचारि बृथा,
घनसार घनो घसि अंग लगावै ?
श्रम-हारि-उसीर-समीर निहारि क्यों,
'मोहन' बीजन बादि डुलावै ?
पति-आनन-चंद बिलोके बिना,
यह आलि ! मनोभव-ताप न जावै ॥१८॥

तिय केती अनंदित होय करैं,
बतियाँ रस-रङ्ग बढ़ावन की ।
अरु भूलतीं केती हिये भरपूर,
उमंग अनंग सुहावन की ॥
पठईं पतियाँ पति-पावन पै,
नहिं बात सुनी अजौं आवन की ।

१८—प्रौढ़ा प्रोषितपतिका ।
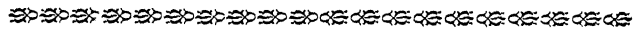
'मन मोहन' स्याम-बिना सजनी !
रजनी तरसावनी सावन की ।।१६।।

किहि कारन अंबन मौर छये,
किहि कारन कोकिल गावत हैं ?
किहि कारन फूल गुलाब खिले,
किहि कारन मारुत धावत हैं ?
किहि कारन कीर-कलापी बकैं
सब हेतु बसंत बतावत हैं ?
पर 'मोहन' लाल बिना सिगरे,
मम प्रानन को तरसावत हैं ।।२०।।

घनघोर घटा उमड़ी नभ मैं,
चपला-सुखमा चित चोर रही ।
बहु दादुर-मोर-निनाद मच्यो,
अरु कैलिया हू करि सोर रही ।।

१९-२०—प्रौढ़ा प्रोषितपतिका ।
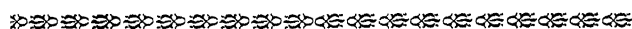
पपिहा पिउ बोलि कै टेरत हैं,
तरु पै लतिका बहु दोर रही ।
'मन मोहन' मित सों जाय कहो,
बरषा हिय मोर मरोर रही ॥२१॥

उठि कै परयंक पै बैठि गई,
जब भानु-प्रकाश अनूप छयो ।
यह सोंचि रही पिय नै अब लौं,
इन आँखिन को सुख क्यों न दयो ॥
अलसानि-सनो तबै आगमनों,
'मन मोहन' को वहि ठौर भयो ।
लखि आनन-कांति मयंक-समान,
तिया-मुख-कंज-बिकास गयो ॥२२॥

२१–परकीया प्रोषितपतिका । २२–मुग्धा खंडिता ।
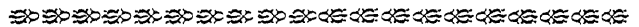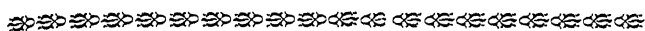
कंटक अंग लगे केहि कारन,
किंसुक-रंग से नैन भये क्यों ?
'मोहन' साँस हिये न समात,
वृथा श्रम-काज कुठौर गये क्यों ?
झीन झँगा बिच नंदकुमार,
बिलच्छन हार छिपाय लये क्यों ?
आनन-कंज तुषार-जरे पर,
भूलि अहो अलि! आय छये क्यों? ॥२३॥

प्रात भये तिय-मंदिर माहिं,
प्रवेस कियो जब नंददुलारे।
पेखि प्रिया उनकी छबि 'मोहन',
बोलि उठी अति बैन करारे॥
"घाव अनेक लगे तन पै,
प्रिय जीवित हैं धन भाग हमारे।

२३—प्रौढ़ा खंडिता।
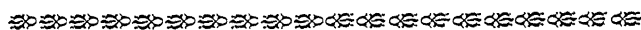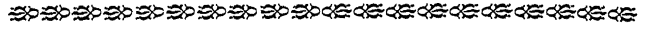
आरती बेगि करौ सजनी !
रन जीति कै नाथ घरै पग धारे" ॥२४॥

सेवती सों बहु प्रीति करी अलि,
ताको भयो रस-चाखन-हारो ।
नेह पै ना फिरि ध्यान धरयो,
थल और गयो तजि ताहि ठगारो ॥
'मोहन' याही तैं वा उर माहिं,
उठ्यो दुख-रूप-दवानल भारो ।
तामैं मनौ जरि अंग गये,
तब तैं खल भृङ्ग भयो अति कारो ॥२५॥

उडु-पुंज समान सखी-गन मैं,
नवला बिधु की छबि छाय रही ।
पिय सैन करी तहँ जाय तऊ,
नहिं ध्यान धरयो सकुचाय रही ॥

२४—प्रौढ़ा खंडिता । २५—परकीया खंडिता ।
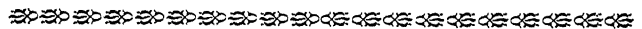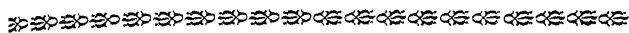
'मन मोहन' रूसि गये तबहीं,
नवला मन में अकुलाय रही।
मनौ सूरज के अथये नभ में,
अरबिंद-कली कुम्हिलाय रही ॥२६॥

'मोहन' रूसि गये जब तें,
मन ही मन नारि घनी अकुलावै।
पूछती ताहि सबै सखियाँ,
अँसुवा उमहैं नहिं हाल बतावै ॥
पै अति वै अनुरोध करैं,
तब बैन इतौ मुख बाहर आवै।
"जो कछु मोतें बनी सजनी !
कहिबो तो चह्यौ पै कह्यौ नहिं जावै" ॥२७॥

अति भूल प्रभात में मोतें भई,
मुख तें कहि आवत ना सगरी।

२६—मुग्धा कलहांतरिता। २७—मध्या कलहांतरिता।
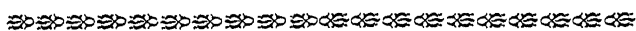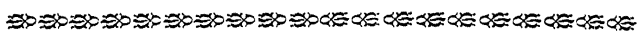
सखि ! प्रीति-लता जो लगावत ही,
गुरु-लोगन सों बहु फीकी परी ॥
कुलकानि गई अरु लोक हँसे,
तऊँ मैंने सदा जेहि राखी हरी ।
छिन माँझ उपारत ताको हहा !
इन हाँथन ना कछु देर करी ॥२८॥

सुंदर केलि के मंदिर मैं जब,
बाल नै प्रीतम को नहिं पाये ।
बात कढ़ी कछु ना मुख तैं,
पर मोद-बिलास सबै बिसराये ॥
मंजुल अंग दहे दुख तैं,
अँसुवा कढ़ि ईछन-छोरनि छाये ॥
'मोहन' पंकज के दल-कोरनि,
ओस के बुंद मनो सरसाये ॥२९॥

२८—परकीया कलहांतरिता । २९—मध्या विप्रलब्धा ।
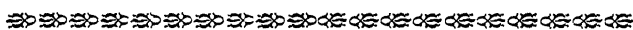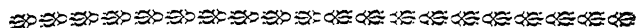
सब सुंदर साज सिंगारि तिया,
रति ह्वै रति-मंदिर-राह गही।
नवनीत सी कोमल सेज तहाँ,
लखि कै बिन पीतम 'मोहन' ही॥
सुभ आनन तौ अति मंद भयो;
अरु आँखिन तैं जलधार बही।
मनौ प्रात के चंद में द्वै दल कंज तैं,
मोतिन की झरी लागि रही॥३०॥

सोंचि रही मनही मन 'मोहन',
पीतम क्यों न अजों पगु धारै।
और तियान को ना अवलोकत,
वै कबहूँ नहिं मोहिं बिसारै॥
बैठी अटा पर चाह-भरी पिय—
आवन-गैल पै यों दृग डारै।

३०—प्रौढ़ा विप्रलब्धा।
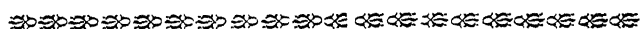
साँझ समै जिमि चंद के हेतु,
चकोरिनी पूरब-ओर निहारै ॥३१॥

मिलि आली सिंगारन-हेतु न्हवावति,
बाल को भूरि सँकोच छयो ।
सिर धोवत ही नवला-मुख पै,
कचभार मनोहर फैलि गयो ॥
तदनंतर बार सँवारन पै पुनि,
आनन नैकु विकास लयो ।
'मन मोहन' राहु दुरे पै मनौ,
पुनि पूरन चंद प्रकास भयो ॥३२॥

अधरात गये अँधियारी छई,
जब छाय गये चहुँधा घन कारे ।

३१—मध्या उत्कंठिता । ३२—मुग्धा वासकसज्जा ।
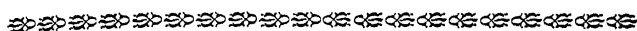
तब नारि नै स्यामल चीर सजे,
अरु नीलम सों जरे भूषन सारे ॥
पुनि 'मोहन' मेचक चोली रची,
घर तैं निकसी मुख घूँघुट डारे ।
तिय साँवरे-रंग-रँगी फिरि क्यों नहिं,
स्याम पै स्याम-मई पगु धारे ॥३३॥

काल्हिहिं ब्याह तिहारो भयो,
हरि आजु बिदेस कहा पगु धारो ।
नाहिं लली कछु बोलति है,
पर वाकी दसा हिय नैकु बिचारो ॥
'मोहन' एक तुम्हैं वह जानति,
वाके नहीं कहूँ और सहारो ।
मातु-पिता सब को तजि कै, पद—
चेरी भई, नहिं ताहि बिसारो ॥३४॥

३३—परकीया कृष्णाभिसारिका । ३४—मुग्धा प्रवत्स्यत्पतिका ।
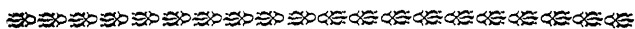
'मन मोहन' प्रात विदेस को जात,
बिलोकि हियो तिय को अकुलायो।
कछु आनन तैं नहिं बात कढ़ी,
पर नीर घनो अँखियान मैं छायो ॥
तबै बैठी रसाल की डार पै कोकिला,
मंजु "कुहू-कुहू" बोल सुनायो।
मनौं आली करै विनती सजना!
घर छोड़िये ना कुसुमाकर आयो ॥३५॥

घन को सुनि मंद मनोहर घोष,
बढ़ी रति-रंग उमंग-मई।
चपला चमकै बरसैं बुँदिया,
चहुँ ओर रसा रस-रूप भई ॥
'मन मोहन' नै रितु पावस मैं,
परदेस-पयान की धारि लई।

३५—मध्या प्रवत्स्यत्पतिका।
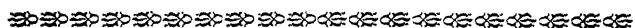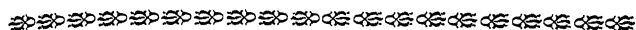
सजना सजनै समुझावति ही,
सजनी ! रजनी सब बीति गई ॥३६॥

बादर ये रस-रासि भये सब,
भूमि भई रस-रूप निहारो ।
सिंधु-सरोवर-नार-नदी-नद,
है सबहीं रस को हि पसारो ॥
पादप-बल्लि भये रस-पूरित,
कोऊ रह्यो रस तैं नहिं न्यारो ।
'मोहन' या सुचि सावन को,
रस-हीन हहा ! करिबो जिन धारो ॥३७॥

चंपक-फूल सुगंधित पै,
भ्रमरी जिमि ताके समीप न आवै ।
सूरज है जग-दीपक पै जिमि,
कौसिक तातैं दरी दुरि जावै ॥

३६-३७–प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्पतिका ।
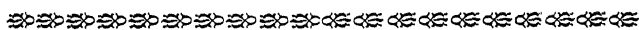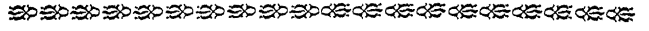
हंस महा गुन-भाजन पै,
बकी को जिमि ताको प्रसंग न भावै।
'मोहन' सील-गुनी पर पामरि !
ताको न साथ त्यों तोहि सुहावै ॥३८॥

भौंह-समान कमान नहीं,
अरु लोयन-सी नहिं मीन लखावै।
लाल प्रवाल न ओंठन-से लखि,
दंत न कुंद-कली सरमावै ॥
'मोहन' कंठ-सों कंबु नहीं,
अरु पंकज ना पद की दुति पावै।
काम-लजावनि पावनि वा,
हरि की छबि देखति ही बनि आवै ॥३९॥

जब तैं इनको सुभ ब्याह भयो,
अनुराग सदा उर मैं अधिकावै।

३८—अधमा। ३९—नायक सौंदर्य।
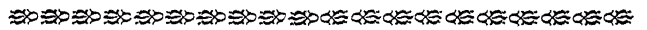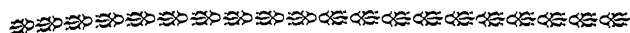
निसि-बासर एक ही संग रहैं,
छिन ओट परै पै दुहूँ अकुलावैं ॥
'मन मोहन' जो नवजोरी बिलोकत,
ताके सखी मन मैं यह आवै ।
इक-अंग है नाह-तिया मिलि यों,
कहिबो यह साँच इहाँ ही लखावै ॥ ४०॥

मोहि माखन की अति चाट लगी,
नित चोरे बिना चित चैन न पावै ।
अब वा ब्रजनारि नैं देखि लियो,
कहिबे को जसोमति के ढिंग जावै ॥
उनकौ तौ सुभाव कठोर महा,
मोहिं बाँधे बिना नहिं कोप नसावै ।
छिपिहौं अब जाय कंदब-निकुंज मैं
और कछू ना उपाय लखावै ॥ ४१॥

४०—पति ।   ४१—वाक्य चतुर नायक ।
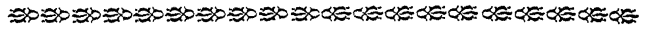
मालती को तजि सेवती सेवत,
तैंने तहाँ निज बास लह्यो है।
ताहि बिहाय चल्यो रस चाखि,
मुदा नलिनी-मुख धाय चह्यो है॥
जानै न तू बिरही दुख को अलि!
तो को सदैव सँजोग रह्यो है।
'मोहन' हेरत हौं तिनको जिन नैं,
प्रिय नारि-बियोग सह्यो है॥४२॥

अंबर है मल-हीन तऊ,
तम-वान प्रमानिकै चित्त विरागै।
जो उड़वृंद अमंद-प्रकास,
अँगारन-सों उर को अति दागै॥
सीतल चाँदनी फैलि रही,
पर जेठ के घाम समान ही जागै।

४२–प्रोषित नायक।
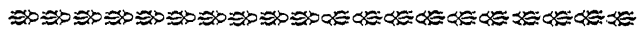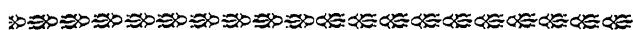
'मोहन' स्याम-बिना सजनी !
रजनीचर सो रजनीकर लागै ॥ ४३ ॥

सिर मोर-पखान के भूषन छाजत,
कम्मर अंबर पीत कसे ।
हिये मंजुल गुंजकी कंपित माल,
अलौकिक कुंडल कान लसे ॥
भलो भाल विसाल रसाल महा,
चख आनन पंकज मंद हँसे ।
सजनी ! जब तैं छबि कान सुनी,
तब तैं वह मो उर बीच बसे ॥ ४४ ॥

जबतैं तुव मोहनि मूरति को,
निरख्यों तब तैं हिय मोर दहै ।
निसि-बासर तेरो ही ध्यान धरौं,
रसना पर तेरो ही नाम रहै ॥
रति-सी छबि को निरखे बिन
'मोहन' रंचक ना चित चैन लहै ।
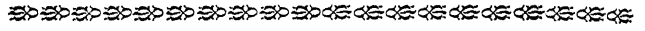
तव द्वार पै आन खरो यह भिच्छुक,
रूप की भीख को फेरि चहै ॥ ४५॥

नँद नंदन सुंदर देखि परे
जमुना-तट काल्हिहिं कुंजन-छाहीं ।
अस मूरति नाहिं निहारी अली !
जस घूमि रही इन आँखिन माहीं ॥
तिहुँ लोकन मैं भल ढूँढ़ि फिरी,
उनको अनुहारि मिले न कहाँ हीं ।
'मन मोहन' को वह रूप सखी,
लखि आवत है, कहि आवत नहीं ॥ ४६॥

बागन खेलन में न लगै चित्त,
अंग-अनंद-उमंग गई टरि ।
खान रु पान सबै बिसर्‌यो अब,
बात किये दृग-नीर परै ढरि ॥
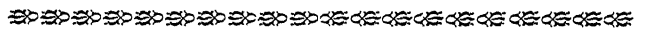
नैनन जोरि निहारति है खड़ी,
'मोहन' सुंदर मूरति की सरि।
चित्र तके भइ चित्र की पूतरी,
ह्वै है हवाल कहा निरखे हरि? ॥४७॥

जिन कुंजनि में नित रास कियो,
तेउ ताप-निवास-से लागि रहे।
जिन फूलन सों बहु प्रीति रही,
हिय तेऊ अँगार-से दागि रहे॥
जेहि त्रैबिध पौन सों राग रह्यो,
तिहि तैं अब प्रान बिरागि रहे।
जिन नैननि आनँद-बुंद लसे,
तिनमैं अँसुवा दुख पागि रहे॥४८॥
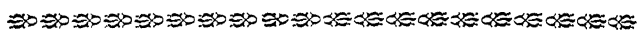
३—कवित्त-कुसुमाकर

मीन-कंज-खंजन के भंजन भये हैं मद,
'मोहन' निहारौ नेकु सुघर लुनाई को ।
पूरन-सरद-चंद छीन-छबि होति बेगि,
पेखि जाके आनन की सोभा-सुघराई को ।।
चाप चारु बिंबाफल लखि कै लजात हिये,
भौंह की बँकाई अरु अधर-ललाई को ।
रसिक-सुजान कान्ह रीझौ क्यों न ऐसी देखि,
राधा गुन-खान की सुरूप-अधिकाई को ।। १ ।।

चंद्रकला जैसे तारिकान मैं लसत चारु ;
'मोहन' बकीन बीच हंसी-छबि भारी है।

१—नायिका-सौंदर्य ।
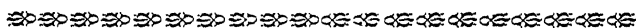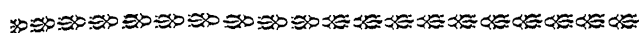
फूलन की माला मैं बिराजै मनि-माला जिमि,
जैसे सुंदरीन में सुहाति काम-नारी है ॥
सरिता सकल बिच सुरसरि सोभित ज्यों,
राजै देवदारन मैं देवपति-प्यारी है ।
बेलिन मैं सोहै जिमि लतिका लवंग तिमि,
गोपिन में राजै वृषभानु की कुमारी है ॥ २ ॥

नैनन पै मीन वारौं भौंह पै धनुष वारौं,
मुख पै मयंक वारौं नागिनी अलक पै ।
नासा सुक-तुंड वारौं ओंठन पै बिंब वारौं,
मोतिन की माल वारौं दंतन-चलक पै ॥
कुच पै कलस वारौं लंक पै मृगेश वारौं,
'मोहन' कलभ वारौं जंघन-ढलक पै ।
पद पै पदुम वारौं गति पै गयंद वारौं,
दामिनी-दमक वारौं अंगन-झलक पै ॥ ३ ॥

२-३—नायिका-सौंदर्य ।
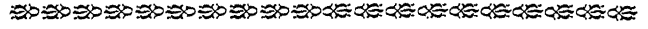
इंद्र-बधू-आभा कैधौं अरुन पटीर कैधौं,
किंसुक-कुसुम कैधौं विद्रुम-बरन हैं।
मंजु जपापुष्प कैधौं सुंदर मजीठ कैधौं,
मानिक अमोल कैधौं हिय के हरन हैं ॥
दारिम-सुमन कैधौं किसलै ललित कैधौं,
कलित कमल कैधौं सुखमा-करन हैं।
संध्या को सिंगार कैधौं मंगल-सरूप कैधौं,
प्राची प्रात कैधौं लाल राधिका-चरन हैं ॥ ४ ॥

बोलति बचन तिया मधुर महान सुर,
सुंदरी बजावैं बीन रम्य पानि धारि कै।
करति विनोद-हास चूमति मुखारविंद,
'मोहन' लगति अंग नाह-चितहरि कै ॥
झाँझरी-झनक अरु नूपुर-खनक-रूप,
दुंदुभी अनंग देति प्यारी मोद भरि कै।

४—नायिका-सौंदर्य।
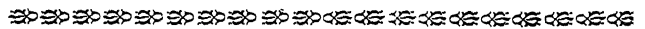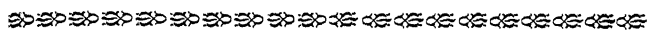
नंद-नंद-नागर को नागरी रिझाय रही,
अतुल अनंद-जुत केलि-कला करि कै ॥ ५ ॥

दीपति रतन की मिली है धौं भुजंग-अंग,
गंग की तरंग कैधौं जमुना की धार तैं।
करिवर कुंभ बीच सीरी जरतार कैधौं,
हीरन की माल मिली नील मनि-हार तैं॥
सुद्ध सूर-घाम मिलो नील के पहार कैधौं,
राका की जुन्हाई मिली कुहू-अंधकार तैं।
लतिका लवंग कैधौं लिपटी तमाल-तरु,
केलि-काल लीन कैधौं राधिका मुरार तैं॥ ६ ॥

रावरी गुसायनि को नैननि निहारि नित,
नेह को निभाय आय उतहू अरे रहौ।
जाने यहि आनन को भूषित महान कीनो,
वाकी मंजु मूरति को हिय मैं धरे रहौ॥

५—प्रौढ़ा। ६—आनंद-संमोहिता।
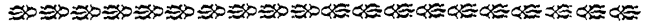
कुंज-कुंज धाय-धाय गायन चराय बन,
वेनु को बजाय प्रान-प्यारी के घरे रहौ ।
ए हो 'मनमोहन' जू ! मोद सों निसंक होय,
जाय सुख-दायनि के पायनि परे रहौ ॥ ७ ॥

भूषन अमोल मंजु मोतिन के धारे तन,
सुंदर सुरंग चीर अजब सुहायो है ।
केलि-भौन दासी ने जगाई जोति दीपन की,
सोभित सयन सुभ सुमन-सजायो है ॥
सौतिन-सदन साँझ समय सिधाये श्याम,
सोंच-जुत सुंदरी को सखी नै सुनायो है ।
परी परयंक दुख दारुन जनावै पर,
"मोहन" महान वाके मोद मन छायो है ॥ ८ ॥

पूरन प्रवीन प्यारी कहाँ लौं बड़ाई करौं,
तेरी चतुराई को न अंत कछु आयो री ।

७—मध्या धीरा । ८—मुदिता ।
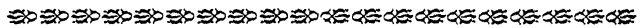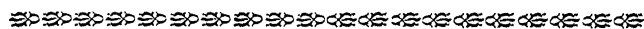
कला मैं प्रवेस तेरो एतो ना पिछान्यो कबौं,
जेतो अब तेरो रूप जाहिर दिखायो री ॥
नंद के गुपाल जू को विदित सुभाव जग,
जाको नहिं नेक कोऊ भेद भुवि पायो री ।
'मोहन' बताय दे री हित की करन-हारि !
कैसेक छिनेक माँझ कान्ह को रिझायो री ॥९॥

चारु छबि आनन की मंद चंद पावै कहा,
स्याम बार भौंर-सम स्याम ! क्यों गहतु हौ ।
रंभा-दंड सुंडो-सुंड 'मोहन' अडोल की क्यों,
रम्य जुग्म जंघन की उपमा चहतु हौ ॥
भौंह बंक रंक धनु अधर प्रवाल कैसे,
आकृति-बरन-बस एकता लहतु हौ ।
मीन-कंज-खंजन कुरंग इन नैन सम,
परिहर लाज किमि नागर ! कहतु हौ ॥१०॥

९—अन्यसंभोगदुःखिता । १०—रूपगर्विता ।
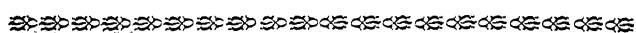
चहुँघा चमकि रही चंचला चपल अरु,
बादर घनेरे घूमि-घूमि रव ठाने हैं ।
हरित मही पै मेह बरसत मंद-मंद,
लतिका ललाम गुल्म बृच्छ लहराने हैं ॥
ऐसे समैं भामा गई मिंत के मिलन काज,
जमुना-किनारे जहाँ कुंज सरसाने हैं ।
"मोहन" मुकुंद बिन सूनो ही सहेट लखि,
नैननि बहत नीर प्रान अकुलाने हैं ॥११॥

मंजु चटकाली-भ्रमराली को निनाद छयो,
पच्छिम उदधि गयो चंद्रमा ढरकि कै ।
सूरज-प्रकास, कंज-हास, तम-नास भयो,
ललित गुलाब कली फूलति तरकि कै ॥
लाल नहिं आये तऊ बाल मुख मौन गहि,
सोय रही लाज-बस गई ना सरकि कै ।

११—परकीया विप्रब्लधा ।
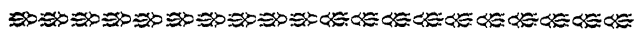
"मोहन" कछुक धुनि मंजुल श्रवन सुनि,
चाह भरी द्वार-ओर देखति भरकि कै ॥ १२॥

खेलन सिकार आजु गये ब्रजराज बन,
ताको अनुराग नेकु उर सों बिसारे ना।
कैधौं तहँ साधुन सों 'मोहन' की भेंट भई,
कैधौं मृग-सिंह-व्याघ्र-सूकर बिडारे ना ॥
कैधौं कहुं घायल ह्वै आलि! पसु भाजि गये,
हेरत विपिन तिन्हैं कितहूँ निहारे ना।
पहर निसा हू गई आहट सुनाति नाहिं,
कारन कवन नाथ अब लौं पधारे ना ॥ १३॥

नेह सों न्हवाय बहु बारन सुधारै कोइ,
जानि आजु ऐहैं नाह रानी के महल को।
भूषन बिचित्र चारु बसन सँवारै कोइ,
सेज पै बिठाइ कोऊ लावै परिमल को ॥

१२—उत्कंठिता। १३—मध्या उत्कंठिता।
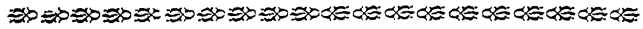
कोऊ हँसै मंद-मंद धीरज बँधावै कोइ,
कोऊ लाय बीरो देति राधिका नवल को ।
'मोहन' चुरावै चष लज्जित ह्वै चंदमुखी,
आलिन-समाज-बीच हेरि हलचल को ॥ १४॥

कान्ह-चित चाहत है तेरे चारु आनन को,
सरद-ससी को जैसे चाहत चकोर है ।
आठौ जाम रसना पै तेरो नाम राजै इक,
मेह-मेह सबद उचारै जिमि मोर है ॥
जैसे चकई के बिना चकवा बिकल होत,
तेरे बिन 'मोहन' त्यों दुखित बहोर है ।
कौन पुन्य कीनो जातें ब्याहत ही राधे! तो मैं,
इतनो अधीन-लीन नंद को किसोर है? ॥ १५॥

देव-नर-लोकन के अंबुज अपार जेते,
तेते वारि डारौं तेरे बदन उदार पै ।

१४—वासक सज्जा। १५—मुग्धा स्वाधीनपतिका ।
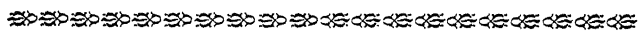
'मोहन' बिलोकि नेकु ऐसे मुख मंजुल को,
रीझै कौन और तिय आनन असार पै ॥
तजि कुलकानि को निसङ्क होय क्यों न करै,
बेगि मृगनैनी ! अनुकंपा परिचार पै ।
रम्य रति-रूप मैं बिकानो मन मेरो यातैं,
दौरि-दौरि गिरै प्यारी ! तेरे दर-द्वार पै ॥ १६ ॥

आनन-अमल-प्रभा कमल को गारै मद,
कंठ रमनीय सकुचावै दर बर को ।
उभय अलक बंक मुख पै लसत मानों,
ब्याली द्वै लिपटि रहीं राका-हिमकर को ॥
अङ्ग की सुगंधि तैं लुभावै बहु भृंगन कौ,
झाँझर-झनक तैं जगावै पंचसर को ।
मैन-मदमाती बनि 'मोहन' मतंगिनी-सी,
जाति स्यामा स्याम-ढिग मंजु केलि-घर को ॥ १७ ॥

१६—परकीया स्वाधीनपतिका । १७—प्रौढ़ा अभिसारिका ।
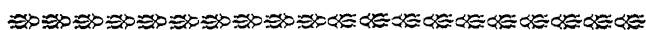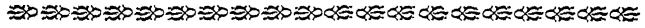
ए हो मन-भावन जू ! सावन सुहावन मैं,
मोहि तरसावन की हा! हा!! जिय धारौ क्यों ?
कारे-कारे बादर ये गाजत करारे भारे,
उर मैं दरारे करैं नाहिंन निहारौ क्यों ?
झिल्ली झनकारैं अरु दादुर दुकारैं अति,
चातक पुकारै-प्रीति 'मोहन' बिसारौ क्यों ?
साँवरे ! परम प्यारे नैनन के तारे होय,
न्यारे होयबे की बात हिय मैं बिचारौ क्यों ?।। १८।।

मोको तजि दूरि ही पधारिबो चहत जो पै,
रावरो उदार मन मो बिन तरसि है ।
'मोहन' रसिक तहाँ मेरे ही संगीत बिन,
पूरन विलासी चित रंच ना बिलसि है ।।
करिकै परम प्रीति पल मैं बिहाय हाय,
प्यारो ! आज जो तू परदेस जाय बसि है ।

१८—परकीया प्रवत्स्यत्पतिका ।
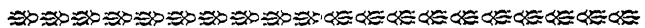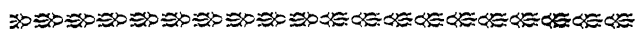
दारुन बियोग पाय मेरो प्रान-पंछी यह,
छोड़ि देह-पिंजर को बाहिर निकसि है ॥ १६ ॥

सगुन अनंद कंद होन ही लगे हैं आजु,
गोकुल के इंदु जदुनंदन पधारि हैं ।
मोको पाद-पंकज की दासी जानि मेरी ओर,
नेह-भरे नैनन तैं 'मोहन' निहारि हैं ॥
मधुर सुधा से बैन बोलि ब्रजचंद आली !
प्यास मेरे श्रौनन की पूरन निवारि हैं ।
मंद-मंद हाँसन तैं मोको निज अंक-भरि,
मेरे सब अंगन की तपनि उतारि हैं ॥ २० ॥

कोकिल-मयूर-कीर-आदिक बिहंगन को,
डर ना मधुर गान जो पै ये उचारि हैं ।
फूले-फूले कुंजन मैं भृंगन की गुंज अरु,
त्रिविध समीर मेरो कछु ना बिगारि हैं ॥

१९—गणिका प्रवत्स्यत्पतिका । २०—प्रौढ़ा आगतपतिका ।
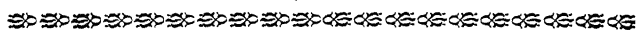
पापी या मयंक की ना रंचक चलैगी अब,
मोहन सकल कला जो पै यह धारि हैं।
तुमहूँ अनंग ! अब मोद सों उमंग भरो,
आजु सुख-कंद नंदनंदन पधारि हैं ॥२१॥

बार-बार फरकत बाम बाहु-नैन अरु,
पुलकित अंग वेंदी खरकत भाल सों।
जानिकै सकुन सुभ कामिनि कहति हँसि,
ह्वै है सखि ! आजु मेरी भेंट नंदलाल सों ॥
एते में निनाद सुन्यो बाजी-खुर-तालन को,
किंकरी को पूछिबे पठाई द्वारपाल सों।
ताही समै आवत निहारि मुसकाय स्यामा,
दौरि लिपटानी 'मन मोहन' दयाल सों ॥२२॥

राजति है राधे तव सुंदर शरीर पै ज्यों,
मंजुल सुरंग चीर अंबुज की माल है।

२१–प्रौढ़ा आगतपतिका। २२–प्रौढ़ा आगतपतिका।
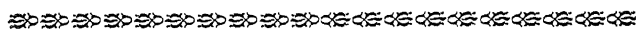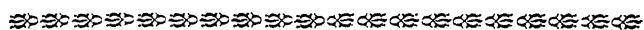
'मोहन' के सीस और अंग पै बिराजै त्योंहीं,
रम्य अवतंस औ ललाम पट लाल है ॥
मेरे इन नैनन मैं दुलही ! तिहारे संग,
भासत मनोहर यों दुलहा गुपाल है ।
नवदल-पूरित प्रियंगु-लतिका तैं जैसे,
मंजरी-प्रवाल-जुत सोभित तमाल है ॥२३॥

जब तैं तिहारे संग वेद-विधि ब्याह कीनो,
प्रीति-पंथ तैं न नेकु तब तैं टलतु है ।
कामी को कुसंग न, धरम-मग-गामी सदा,
दीठि पर-नारिन पै नेकु न ढलतु है ॥
हारीं ब्रजवामा सबै छल-बल करि-करि,
'मोहन' अचल चित नाहीं बिचलतु है ।
राधे ! तव प्रीतम को पेखि इक पत्नीव्रत,
साधुन की साधुता को गौरव गलतु है ॥२४॥

२३—पति ।   २४—अनुकूल ।
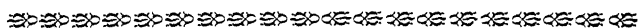
तेरे ही बियोगानल-ताप तैं तपित हौं तौ,
ताते मम आनन को नूर चकचूर है।
है न कछु भूल अनुकूल हौं चराऊँ गैया,
सूल-सी कलिंदी-कूल बीती रैनि पूर है॥
'मोहन' तिहारो नैन रोस तैं अरुन तऊ,
मो उर-सरोज को लखात जैसे सूर है।
तेरे ये कठोर बोल मेघ की गरज-सम,
सुनिकै मुदित महा मो मन-मयूर है॥२५॥

तियनैं भरोखन तैं झुकि-झुकि झाँकि-झाँकि,
काम की जगाई जोति आनन-उजास तैं।
'मोहन' तुरत पुनि दुगुन बढ़ाई ताहि,
सींचि-सींचि नेह तानै मंजु मृदुहास तैं॥
टेरत मिलन-काज परिमल-पूर-पौन,
धावन ह्वै दौरि-दौरि सुंदर निवास तैं।

२५—शठ।
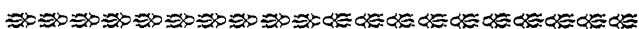
मेघ में ज्यों संपा छुपी सुंदरी सदन-बीच,
मोहन को चोरि चित नैनन-बिलास तैं ॥२६॥

कान्ह ! तुव प्रान प्यारी भूली तन-भान सब,
करुना-निधान ! निज बिरद बिचारिये ।
रावरो महान कोप कैसे कै अजान सहै,
जानैं ना विधान यातैं दोष न बिसारियै ॥
'मोहन' गुमान-भरे पंछीगन गान करैं,
फूलन-बितान तने नैनन निहारिये ।
छायो पंचबान-बंधु सुरभि सुजान ! जानि,
बेगि मन मान तजि महल पधारियै ॥२७॥

बीते दिन केते मृग-मांस के अहार बिन,
संग के सिकारी आजु विपिन पठाय हौं ।
सिंह-कोल-भालु-बाघ बधि निज हाँथन तैं,
साथिन को निज बल-पौरुष दिखाय हौं ॥

२६—उपपति । २७—मानी ।
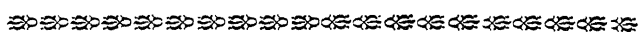
जमुना किनारे घने बन में सुने हैं जंतु,
जेती अभिलाषा जिय तेते तित पाय हौं ।
काहू को न साथ लैहौं आयुध अनूप गहि,
मृगया करन काल्हि प्रात ही सिधाय हौं ॥२८॥

'मोहन' मनैबे हेत सजनी सरोज-मुख,
भौंहनि नवाय हिये कबै मान धरि हौं ।
देखिकै मुखारविंद मंजु-मंजु बेनु सुनि,
कबै मोदयुत अभिलाषा निज सरि हौं ॥
श्रौन-पुट पीहौं कबै मुरली-मधुर-धुनि,
कबै कुंज-पुंजन में रास-हास करिहौं ।
लाल-अधरानि कौं धौं कबै-रस-पान करि,
आनंद के कंद ब्रजचंद अंक भरि हौं ॥२९॥

२८—वाक्य-चतुर नायक ।

४
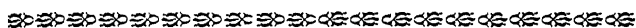
विविध-विनोद
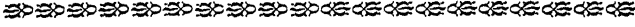
४—विविध-विनोद

१—संस्कृतमयी सूक्तियाँ

राजविद्या

अध्यात्मसाधनपरस्य यथात्मविद्या
मोक्षप्रदाऽविचल-मानस-चिन्तनीया
सेव्या सखे सकलकामदुधा तथैव
संसार-सिद्धि-मनसः खलु राजविद्या ।

विधेर्विचेष्टितम्

कमर्थमाश्रित्य नृदेह-निर्मितिः
कयाधियाऽन्नेन च तद्भृतिः-कृता
मृतेर्विधिस्तद्धरणाय किं पुनः
विचित्रमेतद्धि विधेर्विचेष्टितम् ।
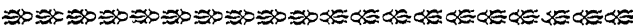
प्रबोधः

नैवाप्ता परमोदयं किमधुना क्षुद्रा हि जापानजाः
संत्यज्य व्यसनानि जीर्णजरठा बुद्धा न किं चीनजाः
एवं मोहमपास्य नो किमपरे प्राप्ताः परामुन्नतिम् ।
भो भो भारतवासिनस्तदपि नो निद्रां कथं मुञ्चथ ।

स्वरुचिः

नेमे पदार्थाः सुखदुःखहेतवः
करोति किन्तु स्वरुचिर्हि तांस्तथा
आनन्ददा ये दयितासमागमे
भवन्ति किं ते विरहे न दारुणाः ।

वामाक्षि-शिक्षकः

वामाक्षि ! मां कथय कस्तव शिक्षकोऽस्ति
यस्मात्त्वयावकलिता वर-विभ्रमा ये
त्वं तान्नवांस्तु सहजान्वदितुं न शक्ता
ते शिक्षिता तु मदनाद्यदि सोऽप्यनङ्गः ।
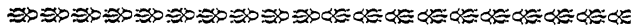
समय-दैर्घ्य

जानाति किं सकल-भूमि-सुखोपभोगी
वर्षाणि यान्ति खलु तस्य निमेष-तुल्यम् ।
शोकाकुलेन मनसा दिवसानि यस्य
गच्छन्ति तेन विदितं समयस्य दैर्घ्यम् ।

दौर्बल्य-दोष

जलपन्तु धर्म-कुशला विविधान्हि धर्मान्
न्यायांश्च नीति-निपुणा बहु-युक्ति-पूर्णान्
सिद्धान्तमेनमवधेह्यचलं हि लोके
दौर्बल्यमेव परमं खलु दोष-मूलम् ।

देशानुराग

धनदविभवभाजः कामकान्तेर्विजेतुः
सकल-सुगुण-राशेः सर्व-विद्यावतोऽपि
हृदि न वसति पूर्णो यस्य देशानुरागः
परम-मलिन-कीर्तेस्तस्य किं जीवितेन ।
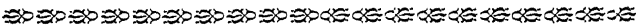
उपालम्भ

भोगान्विभुज्य विषयाद् विरतो भवामि
शास्त्रेषु कुण्ठित-रुचिः परिशीलनेन
दृष्टो मया तु सततं कविता-विलास
श्चेतो हि कां तदपि तन्मयतां प्रयाति।

सूक्ति

मन्दः शनैर्भवति दुःसह चण्डभानु
रावासमुन्मुखतया विहगा व्रजन्ति।
कान्तिं तनोति भुवने मधुरो हिमांशु
र्वामाजने लसति सायमनङ्ग-वेगः॥

२—दोहा-दूर्वादल

ओछा और उच्चपद

ओछे नर को उच्चपद, किमि करि सकै महान?
कहा असुर-गुरु मीन-गत, होवत ससी-समान?

अन्ध प्रेम

नैन-बिहीनो नेह है, यहै यथारथ बात ।
ना तो क्यों न चकोर को, बिधु को अंक दिखात ॥

सूर्यास्त

रबि नहिं पच्छिम उदधि में, परयो पुंज अंगार ।
तम न छयो ताते उठ्यो, नभ-बिच धूम अपार ॥

दोषागार लोभ

जाल परी तलफत दुखित, झख को देखि कहार ।
हरष करत करुना कछु न, लोभ दोष-आगार ॥

बन्धन-दुःख

पावत सुक पिंजर-परयो, नित फल मधुर अनेक ।
तउ तलफत बाहिर कढ़न, बंधन सुखद न नेक ॥

काव्य-सुधा

काव्य-सुधारस स्वाद को, रसिक करहिं निरधार ।
अलि बिन और न जानही, कमल मरंदहिं सार ॥
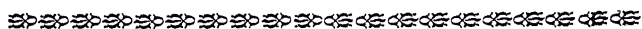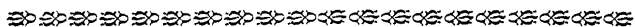
कान्तिहीन विधु

कांति-हीन विधु ना भयो, परी राहु की छाँह।
सकुचित कुमुदिनि! क्यों भई, होहि विमल द्रुत नाह॥

काव्य-सुमन

विमल सरस रचना सुभग, रसिक-मधुप जहँ लीन।
काव्य-सुमन काको मन न, बरबस करत अधीन॥

सेवक

सेवक को चित चाहिये, जैसो निरमल काँच।
अंतर अंतर ना रखै, प्रगट करै सब साँच॥

खल और व्याल

व्याल डसे ते प्रान को, होत दुःख इक बार।
खल-डसिबो दारुन महा, पल-पल ताप अपार॥

प्रभु की गति

प्रभु की गति अतिसय प्रबल, अचरज होत निहार।
तरि न सकत जो ताल सो, करत पयोनिधि पार॥
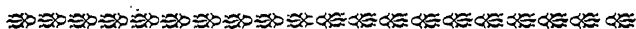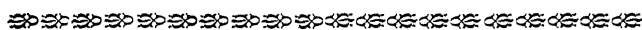
स्पर्श और दर्शन

नीके फूल गुलाब के, भँवर रहे लिपटाहि।
जो सुख दरसन में मिलै, परसे मिलै न ताहि ॥*

प्रेम-मनुहार

मधुहि कहत बुध बुद्धि-हर, मादक भाँग बिचार।
याते प्रिय-वर ! लीजिये, प्रेम-सुरस-मनुहार ॥

अधझड़ा फूल

अभिनव-विकसित कुसुम नहिं, जानत मधुप-कुचाल।
नेह-निबाहक है न यह, झरे सुमन सुनु हाल ॥

घन-घोष

बरजि-बरजि हारी सुवन, यह न गरज गजराज।
तरजि-तरजि जावत किते, घोषहि सुनि घनराज ॥

---

* राजा रामसिंह जी की सर्व-प्रथम रचना—
—संपादक
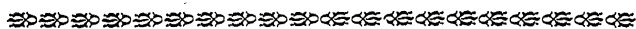
नूतन-पुरातन

नूतन सबही अगुन नहिं, नहिं सब सगुन पुरान।
जोग-अजोग विचारि उर, धारन करत सुजान ॥

इन्द्र-धनुष

पावस ग्रीषम-विजय करि, आवत सहित निसानु।
इन्द्र-धनुष नहिं, तासु यह विजय-पताका जानु ॥

संगी का विश्वास

संगी के गुनगान सुनि, कीजै नहिं बिसवास।
अति सीतल चंदन तऊ, पन्नग-गरल-अवास ॥

मूर्ख की मौन

जदपि सुधीन-समाज में, मूरख-भूषन मौन।
पै रसना रोकहि कहौ, नर सुजान बिन कौन ॥
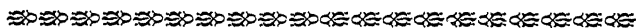
३—सवैया-सुधा-स्रोत

प्रचण्ड पाप

हिरनाकुश-वच्छ न फारन है,
नहिं दानव संख बिदारन है।
खर-दूषन को हनिबो हू नहीं,
यह नाहिंन रावन-मारन है॥
सिसुपाल को सीस न छेदन है,
नहिं कंस को प्रान निकारन है।
प्रभु ! कम्मर अंबर सों कसिये,
मम पाप प्रचंड पछारन है॥

समर्थ रक्षक

धीवर ताल पसारत जाल,
न सोऊ सदा झख-झुंड निकारै।
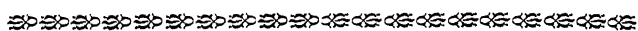
ब्याध सदैव प्रहारत पै,
पसु कानन में तऊँ प्रानन धारै ॥
रे नर पोच ! न सोंच कछू जिय,
तो पर जो कोऊ घात बिचारै ।
है समरत्थ बचावन-हार तौ,
मारन-हार कहौ किमि मारै ॥

काव्य-निन्दा

काव्य के मंजु मनोहर सार को,
कोऊ सिखे यदि जाने बिना हीं ।
निंदित मानि करै अवहेलना,
तौ जिन सोंच करौ मनमाहीं ॥
कंज-विकासक है रवि-तेज पै,
तासों उलूक तौ दूरि पराहीं ।
जो जिनके गुन जानि सकै नहिं,
सो तिनको गिनै हेय सदाहीं ॥
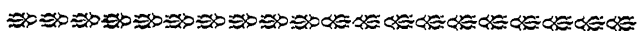
गुलमोर*

सब ठौर महान प्रयास बिना,
कछु द्योस मैं 'मोहन' तू बढ़ि जावै ।
बहु सुंदर ये तव पात हरे,
मनु पन्नग की सुखमा दरसावै ॥
अति लाल ललाम प्रसूनन की,
छबि को लखिबे अँखिया ललचावै ।
गुलमोर ! न है तुव फूल सुगंधित,
दोष यहै मोहिं नाहिं सुहावै ॥

स्वभाव

मैल-भरे गज को निज हाँथ,
महावत ताल में जाय न्हवावै ।
ज्योंहिं कढ़ै सर तैं वह कुंजर,
स्वच्छता नेकु न ताहि सुहावै ॥

* गुलमोर को युक्तप्रान्त में पँचरैना कहते हैं । कदाचित् अँगरेज़ी में इसी को Gold Mohur tree कहते हैं ।
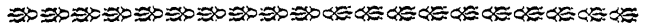
'मोहन' धूरि उठाय कै पानि तैं,
सीस पै डारि मलीन बनावै ।
जो दृढ़ जाको सुभाव पर्‌यो वह,
कोटि उपाय किये नहि जावै ॥

भाग्य

रासभ-भार बहैं नित भूरि,
सहैं दुख पै तिन रंचक पैहैं ।
रंक निसंक करैं बहु काज पै,
अन्न सों पेट न पूरे भरैहैं ॥
घोर श्रमी सु कृषी उपजावत,
मूस पै खाय कै धूरि मिलैहैं ।
पूरन उद्यम क्यों न फलै पर,
भाग कुअंक कहो किमि जैहैं ॥

चित-चोर

हरि जा दिन गोरस चोरि भज्यो,
वह चोर भयो हम जानि लयो ।
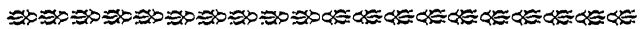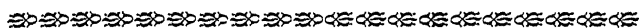
सब जाय कही तउ आलि ! अजौं,
उत को न जसोमति ध्यान गयो ॥
बिन सासन दोष बढ़े सिसु के,
यह जानति, पै नहिं दंड दयो ।
अब देखि लो माखन चोरत-चोरत,
कान्ह महा चित-चोर भयो ॥

चन्द्र और संयम

पूरब मैं निकसै रजनीस;
असेष कलान को अंग धरै है ।
'मोहन' रंग सुरंग मनोहर,
केसरि की सुखमा निदरै है ॥
पै यह त्यों सित होत छिनौ-छिन,
ज्यों उड़-मंडल मैं बिहरै है ।
चंद-दसा यह चंचल सो सुठि,
संयम को उपदेश करै है ॥
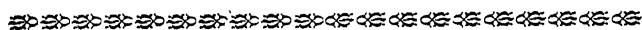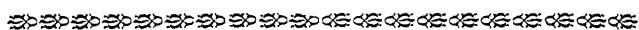
क्षत्रिय-उद्बोधन

अंत भयो महाभारत को,
तब तैं यह नींद महा अनुरागे ।
राना प्रताप से बीरन ने,
बहु यत्न किये पर ना फल लागे ॥
दूसरी जातिन को लखि जागत,
फेरि सपूत जगावन लागे ।
हा ! जगदीस ! जरै जिय देखि कै,
छत्रिय-जाति तऊ नहिं जागे ॥

जागि जपान जनाय दियो,
अति पौरुष जो लखि रूसिहु भागे ।
चीन के लोग अफीम-उपासक,
पीनक छोरि बिलोकन लागे ॥
दीन अधोगत दास पताल के,
जागि कै ज्ञान सुधारस पागे ।

हा ! जगदीस ! जरै जिय देखि कै,
छत्रिय-जाति अजौं नहिं जागे ॥

ब्राह्मण वैस्य रु सूद्र दिनों-दिन,
सिच्छन पाय प्रभाव बढ़ावैं ।
ढेड़-चमार-सी अंत्यज जाति,
सुधारि दसा निज उन्नति पावैं ॥
पामर भिल्ल खरे पसु से,
मदिरा तजि कै निज संघ बनावै ।
कौन से पाप से नाथ दयानिधि !
छत्रिय-जाति अधोगति जावै ॥

भक्त-दास

जो जग आरत-तारक हौ,
प्रभु हौं अति दीन करी-गिध जैसे ।
जो हरि ! नीच-उधारक हौ,
मोहि से नहिं नीच अजामिल ऐसे ॥
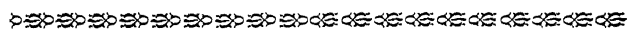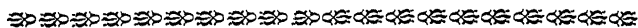
जो तुम हो कपि-रिच्छ-निवाजक,
पामर हौं नहिं वे पसु वैसे ।
जो निज दास-समान चहौ गुन,
तौ नहिं धारि सकौं गुन तैसे ॥

कम्बु और कण्ठ

जन्म लियो रतनाकर मैं अरु,
है कमला भगिनी बिधु भाई ।
पूजत हैं हरि को द्विज भावुक,
तोहीं सों मोद तैं स्नान कराई ॥
'मोहन' भाग तैं थान मिल्यो,
मधुसूदन-पानि-सरोज सदाई ।
पायो सबै तऊ पाय सक्यो नहिं,
कंबु वा कंठ की तू सुघराई ॥

प्रिय-वियोग

जो अरविंद जरै मकरंदित,
दीन मलिंद अनंदहि ख्वैहैं ।
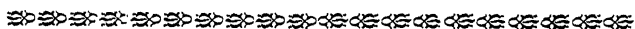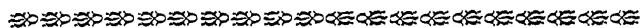
स्वाति-नछत्र सुधा-सम बूँद न,
हा ! नहीं चाहक चातक ज्वैहैं ॥
सूर-ससी अथये निसि-वासर,
ताप ये कंज-कुमोदिनि छ्वैहैं ।
प्रीति लगी जिनकी जिनसे,
तिनके बिछुरे तिनको दुख ह्वैहैं ॥

फूट

कुरुबंसिन को कुल राज उजारति,
संक न तोहि निसंकिनि आई ।
फिरि छत्रिय-सोनित-पान कियो,
चिर भारत पै परतंत्रता लाई ॥
मरहट्टन को दल फोरि हर्यो बल,
हिंदुन की नत्रशक्ति नसाई ।
पुनि और अनेक कुकर्म किये,
तउ डाँकिनि फूट! अजौं न अघाई ?
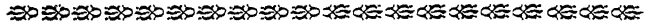
४—षट्पदी

उपदेश

दुख महँ छाड़ न धैर्य, मुख न नित असत बचन कह ।
निकट न कढ़ मग लोभ, स्वतिय बिन अवर न तिय गह ॥
छमा करहु जन-भूल, करन कोप नाहिंन उचित ।
फँसि जिन दृढ़ जग-जाल, अतिथि सत्रु भेटहु सुचित ॥
तन अहित मान मद जनि करसि, विद्या व्यसन सु ध्यान धर ।
इमि कहन-हार अगनित जगत, करन-हार नहिं बहुत पर ॥

५—कवित्त कुसुमाकर

राजा और कलिकाल

असन-बसन आदि छात्र-धुर-धर्म त्यागि,
नूतन असभ्य रीति सभ्य करि लीनी है ।
खेलन अटन बीच प्रजा धन खोवैं वृथा,
जोवैं पर-नारी नित सुंदर नवीनी है ॥

वंचक को जानै निज, न्याय पै न नेक चित्त,
बुद्धि-हीन लीन-मधु विद्या तजि दीनी है ।
जाय-जाय का पै कहौं हाय-हाय राजन की,
क्रूर कलिकाल तैंने कौन गति कीनी है ॥

मेघ की महत्ता

तेरी अनुकंपा बिन फूलते न फूल भुवि,
कंज-कुंद-मल्लि आदि कोटिक विधान के ।
बृच्छन-विहीन होती पुहुमी न होते अरु,
ठौर-ठौर हरे-हरे खेत ये किसान के ॥
सूखि जाते सिंधु-सर और फिर केती कहैं,
जीवन को दाता तो को जानत जहान के ।
एरे घनराज ! अब लाज तजि गाजै हहा !!
लेत किमि जीवन बियोगी अवलान के ॥

बलि-बावन

ह्वै है द्विज जो पै यह जाँचत हैं मोपै आय,
तीनि पैंड़ भूमि देन कहा सकुचाऊँ मैं ।

मेरी है प्रतिज्ञा नहिं याचक विमुख जै है,
किमि प्रनभंग-काज रसना चलाउँ मैं ॥
बावन जो विप्र कहुँ होयगो त्रिलोकीनाथ,
दान देय लोकन को पूर यश पाऊँ मैं ।
नीति औ अनीति हू को नेकु ना बिचार गुरु,
दानवीर होय कैसे कृपण कहाउँ मैं ॥

असार संसार

मंडप न रैहै थिर चित्र न अचल ह्वै है,
सुंदर अनोखी सोभा सब ही बिलायगी ।
परम अनंद सोऊ वेगि ही करैगो कूच,
गान की सरस तान फेरि न सुनायगी ॥
बैठे ये सु घर जेते निज-निज ठौर जैहैं,
दीपन की माला निहँचय नास पायगी ।
दीप दहे कीटन की छार हू बहैगी भोर,
'मोहन' सभा की एक बात रहि जायगी ॥
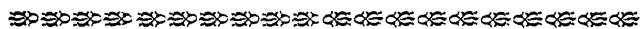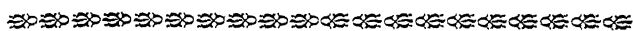
दुर्योधन की गर्वोक्ति

भालन-अनिन-भय भालन-अनिन जेती,
पाण्डु-पुत्र पृथ्वी देन नाहिंन बिचारैगो ।
यातो धर्म-युद्ध-तीर्थ न्हाय पावों स्वर्ग-लोक,
निज अंग-दान देकै गीध प्रतिपारैगो ॥
नातो गदा-भच्छ देकै पांडव-कलेवर को,
रुंड-मुंड रक्त-जुक्त भूमि करि डारैगो ।
इन भुजदंडन तैं सत्रुन कदन करि,
सुद्ध छिति-मंडल अखंड राज धारैगो ॥

आशा और स्वाँसा

चातक के मन माहिं चाह स्वाति बूँदन की
यातें घनो घाम सीत तन पै सहतु है ।
रंक त्यों सहत सब राव पद पाइबे को,
दारिद के जेते दुख दारुन दहतु है ॥
भोगी भोग भोगन को रोगी जे असाध जग,
कटु रस नींब आक मोद ते लहतु है ।
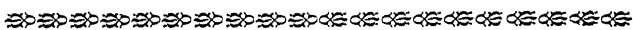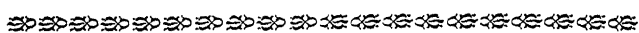
ह्वैबो मन बाँछित तो हाँथ रघुनाथ जू के,
आस-बिसवास ही तैं साँस ही रहतु है ॥

काव्य-व्यसन

कोऊ मधुपान माहिं मानत अनंद अति,
जामैं नास होवै बेगि धर्म-धन-तन है ।
कोऊ बहु खेलन मैं धारत प्रमोद महा,
जामैं वृथा बुद्धि-बल होवत कदन है ॥
कोऊ नीच कामन मैं आनँद अपार गिनै,
जामैं जन खोय सब परै नरकन है ।
मेरे जान मतिमान-हिय के बिलास हेत,
दूषन-रहित बर कविता-व्यसन है ॥

माली और वृक्ष

पसुन-प्रहार बहु कष्ट तैं बचाय राख्यो,
बालपन बीच तोको सूलन की बार मैं ।
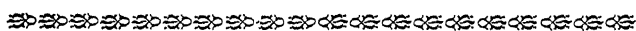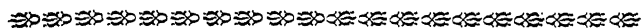
ल्याय-ल्याय रैन दिन पात्रन पिवायो पय,
लूवन-लपट घोर ग्रीषम-प्रजार मैं ॥
ढाँपि-ढाँपि बसन तैं हिम को निवारचो भय,
याही विधि सेयो तोहि 'मोहन' कुवार मैं ।
कीर सब खैहैं अब मीठे फल आम तोपै,
माली प्रति दैहैं कहा प्रति-उपकार मैं ॥

वाटिका की रक्षा

केतकी चमेली कुंद मल्लिक सुभग जाय,
मालती-सुगंध छाय सोभा सरसानी है ।
कलित गुलाब राजै ललित लवंगलता,
'मोहन' विलोकि वृत्ति चित्त की लुभानी है ॥
दाखन के झौंरन पै भौंर भननात तहाँ,
ऐसी ये परम रम्य वाटिका सुहानी है ।
माली ! जिय काँटन लगायबो अजोग जानि,
करि है न वार तो पै वारी लुटि जानी है ॥
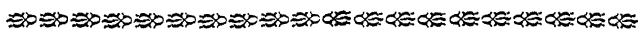
सज्जन की प्रीति-रीति

पंकज के अंक लाग्यो सैवल निरखि नर,
पूछ्यो ताहि काते यह ऊँचो पद धारे हैं ।
तू तौ एक तुच्छ जीव कमल जनक धाता,
रमा-गेह माधव हू नेह-दीठि डारे हैं ।।
ऐसो गुन कौन जाते यानै तोहि अंग लयो,
बोल्यो वह संग निज जन्म सों निहारे हैं ।
दीन को बिसारे नाहिं नेक ना बिचारे दोष,
सज्जन ये प्रीति-रीति यों ही प्रति-पारे हैं ।।

मंजु कंज

सुंदर सरूप जाको उर है सरस महा,
रसिक मलिंद मन रस ते लुभायो है ।
जग में परम रम्य सौरभ पसारि पूर,
हिय मैं सुजानन के मोद अधिकायो है ।।
सैवल को पास कीच-बीच मैं निवास तऊँ,
'मोहन' न नेकु दोष अंग माहिं आयो है ।
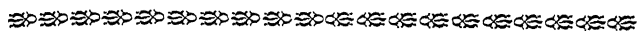
बिधि नै बनाय गुन-पुंज कंज ही को मंजु,
आपनो अपार कला-कौसल दिखायो है ॥

उपल-वर्षा

अंबुधर ! अंबर मैं आदित को ढाँपि छयो,
काहू को न रंचक तू भलो दरसावै है ।
चहुँघा प्रचंड सीत झकझोर झंझावात,
प्रान पसु-पंछिन को पूरो दुख पावै है ॥
घोर घन-घोष यह बाद्य घोर बेला सम,
सज्जन के श्रौनन को सूल सों सतावै है ।
सुरभी-समय सब बरषा सुमन चाहै,
उपल-पतन नीच काके मन भावै है ॥

बसंत के बादल

कीर सुभचिंतक-ज्यों 'मोहन' दुखित भये,
जुगुनू कुटिल जिमि तेज सरसाये ये ।
लोभी ज्यों कलापी-गन नाचिबो सुभग त्यागि,
ताकि-ताकि मेघ ओर घने हरषाये ये ॥
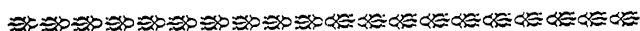
दास-से कपोत-पुंज मन में निरास अति,
निंदक-समान भेक घोर रव लाये ये।
सुजन-उदय-काल आगम विपद जैसे,
सुरभी-विकास-समै घूमि घन छाये ये ॥

कुक्कुट

पालक के आँगन को दूषित करत नित,
धरनी मलिन ही में घूमिबो सुहायबो।
हरिबो महान दीन कीटन के प्रानन को,
वस्तुन घिनौनिन पै पूरो मन लायबो ॥
'मोहन' निसंक लीन्हे संग बहु कुक्कुटिन,
मगन अनंग-रंग आनँद लुभायबो।
कुक्कुट अगुन एते भेंटत सगुन एक,
भजन-करन-काल नरन जगायबो ॥

सज्जन और हाथी

तीखे-तीखे कंटक तें तनु ज्यों बचाय अलि,
गुल्म तरु बल्लिन सों फूल-रस लेतु हैं।
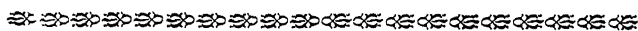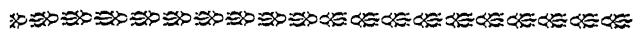
घट लै उभय नट पतन निवारि निज,
जैसे डुलि डोरहिं पै चलत सचेतु हैं ॥
गज ज्यों सँभारि देह कीच मैं धरत पाँव,
प्यासे जब जावैं वह पय के निकेतु हैं ।
धर्म-कुल-सील त्योंहीं 'मोहन' निबाहिबे को,
कलि मैं सुजान फूँकि-फूँकि पगु देतु हैं ॥

कृतघ्न किङ्कर

धन्यवाद बीच ध्यान नेक न धरत नीच,
नैन नाग्र खाय जाय जितनो खवावै माल ।
दीठि चूके धीठ अति फोरि डारै भाजन को,
खावे अरु रोरि सब मोद तैं भरत फाल ॥
आज मन-वांछित न पावै निज ठौर चोर,
जावै थल और दौर चाटिबे चटोरे काल ।
सारे महिमंडल मैं 'मोहन' सुजान जान,
एकसी बिलाव अरु किंकर कृतघ्न चाल ॥
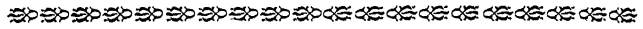
विद्यानंद

सुंदर सदन सेज सुंदरी समान सब,
वाको रस-हीन लागे विद्या इक ध्यान में ।
बाहरी दिखाव सब बालक-विनोद सम,
लालसा विभव तुच्छ जाने निज जान में ॥
'मोहन' बिलोकि ताको अचरज बाढ़ै अति,
मदिरा मगन धन जन अभिमान में ।
ब्रह्मानंद-लीन एक जोगी को न जाने पर,
विद्यानंद-लीन सम सुखी ना जहान में ॥

धीवर और कुटिल खल

डारै जाल ताल दीन मीनन पकरिबे तू,
साधु पै बचन जाल डारैं वे जरूर हैं ।
मंद-मंद ऐंचि जाल तिनको तू फाँसै तेऊ,
सनै-सनै सुजन को फाँसैं भरपूर हैं ॥
पुहुमी पटकि तू तौ प्रान इकबार लेत,
वे तौ प्रान लेवैं पर देवैं दुख भूर हैं ।
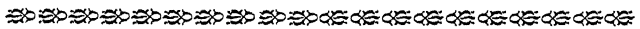
धीवर ! न खेद करु घोर निज करनी पै,
कुटिल घनेरे खल तोसौं बढ़ि क्रूर हैं ॥

खल

मंजु गज-मोती-काज करि-कुंभ फारिबे को,
'मोहन' परम लोभी श्रम ज्यों धरतु है ।
मृगन को मारिबो बिचारि मृगमद-हेतु,
ब्याध धारि आयुध ज्यों बन बिहरतु है ॥
भील-दल भेदिबे को चंदन के वृच्छन को,
उद्यम मैं रैन-दिन जैसे होत रतु है ।
सुजन सतावन को ऊधम मचावन को,
तैसे खल कोटिन उपायन करतु है ॥

६—ऋतु-शोभा

बसंत (छप्पय)

निकसत तरुवर बल्लि , सघन सद ललित नवल दल ।
विकसित दिसि-दिसि बीच , कलित तन सुमन सरस भल ॥
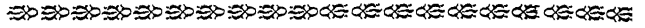
पुहुप झरत मकरंद, त्रिविध अनिल 'मोहन' बहत।
गुंजत मधुकर-पुंज, मधुर मधू उपबन लहत॥
कल विहग कीर कोकिल सरस, नाचत मत्त कलापि-गन।
इहि सुरभि माहिं केली करत, माधव प्रमुदित होय मन॥

ग्रीष्म

दिनवर किरनि प्रचंड, तपित कलमलत अचर-चर।
अमल कमल मुरझात, तड़फि झख मरत निरस सर॥
अंग झरत प्रस्वेद, सलिल पान प्यास न बुझत।
खग तरु-छाँही लेत, पथिक श्रमित पंथ न सुझत॥
बहु प्रबल घोर लूवन चलत, धरनि अनल सम लाल अति।
गृह-तजन नेक चित्त न चहत, अदभुत ग्रीषम-काल-गति॥

पावस

गगन बिज्जु दमकंत, घोर घन दिसि-दिसि घोरत।
भेक-निकर रव करत, सोर बरही पुनि जोरत॥
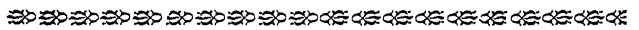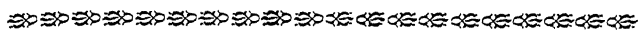
बक खग उड़त अपार, झिल्लिगन अति झनकारत।
चातक पिउ-पिउ शब्द, मुदित-चित मंजु उचारत॥
जल बरसि-बरसि नारनि भजत, पावस प्रबल पिछानिये।
'मनमोहन' पति रितु सुखद मन, भवन-तजन नहिं आनिये॥

शरद

बन उपबन सरसात, रहित-घन गगन लसत अति।
उड़गन नभ चमकंत, रमनि-मन हरति रजनि-पति॥
कौमुदि सित बहु फैलि, रजत-सरिस बसुधा लगत।
निरझर सर नदि नद; विमल कमल राजत जगत॥
सुभ धवल काँस पंकज सरन, 'मोहन' मुदित महान मन।
इहि सरद माहिं केली करत, माधव गोपिन साथ बन॥

हेमंत

सीतल बहत समीर, दहत बहु अमल कमल-दल।
मेटत दुरजन ज्यौंहि, सुजन द्रुत परम सुगुन भल॥
न्यून होत दिन-मान, घटत मति जिमि मधु-पानिन।
वृद्धि होत निसि-मान, बढ़त अघ जिमि दुर प्रानिन॥
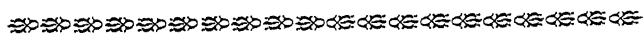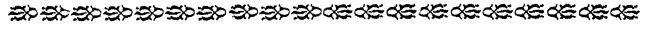
अति अनल-ताप लागत रुचिर, नीति-निपुन नृप-दंड-सम।
ब्रजतियन कंत 'मोहन'-रहित, भासत समय हिमंत यम॥

शिशिर

बरषत अतुल तुषार, चलत हिम-मिलित अनिल जहँ।
थर-थर काँपत गात, बजत बहु रदन बदन महँ॥
अंबु अवनि आकास, सुभग बसन सीतल परम।
भाजन धरि-धरि आग, तपित करत जित-तित हरम॥
यह शिशिर-सीत विरहीन इक, 'मोहन' भासत काल मनु।
उर तिय न लाय सोवत सयन, पीड़ित तन तिनके सुतनु॥

बसंत-वायु (दोहा)

रितुपति-मंद-बयारि तैं, डोलत तरु-सिर नाहि।
मधुर गान सुनि मधुप को, झूमत मनौ सराहि॥

कुंज-कुंज गुंजत मधुप, कूजत कोकिल-कीर।
सीतल-मंद-सुगंध-मय, बहत बसंत-समीर॥
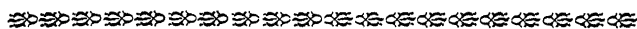
ग्रीष्म-निशा

परिपूरन चंद अमंदहि की,
उडुवृंदन में छबि मंजु लसी है।
सुभ सीतल चाँदनी फैलि रही,
भुवि घोर दिवाकर-ताप नसी है॥
'मन मोहन' सेज अटा पर ये,
पयफेन सी फूलन-दाम कसी है।
सुख-दैन सुहावनि मैन-बढ़ावनि,
ग्रीषम रैनि सु नैन बसी है॥

वर्षा-माता

प्याय पयोधर-मधुर-पय, पोषति सकल जहान।
को जग जीवन-दायिनी, पावस-मातु-समान॥

मंद फुहार

मघवा मंजुल मेघ सों, बरसत मंद फुहार।
जौहरि मनु मंजूष तैं, गेरत जलज अपार॥

७—लव सरोवर

वातावधूतकमनीयविफुल्लकंज
मुन्मत्तभृङ्गरणितं सुविहङ्गकान्तम्
शोभान्वितं विमलशीतसुधोदकेन
सेव्यं सदा लवसरः सरसं निदाघे ।

प्रथमं विहगाम्बुजान्वितं
सरसं दृष्टमिदं सरो मया
अधुना बत जीवनं विना
तनुवत् तन्नितरामशोभनम्

सुरभि समय इक दिवस में, गयो लदूने-गाम ।
मुदित होय कविता रची, लखि लव-ताल ललाम ॥ १ ॥
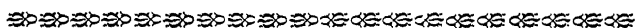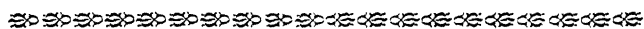
दिसा पूर्व में घाट-प्रासाद राजै ।
सत्यो बारि में कान्ह को कुंज भ्राजै ॥
किते घाट पै देवता के सु चौरे ।
वहीं पास में देव के थान औरे ॥ २ ॥

उदीची दिसा आम के वृच्छ सोहैं ।
कछू दूरि पै टेकरी छुद्र दो हैं ॥
विराजे हनूमान जू एक पै हैं ।
सटी अन्य लंबी लखावैं उतै हैं ॥ ३ ॥

प्रतीची दिसा ताल में नार आवे ।
इतै भूरि वर्षा-समै बारि लावे ॥
तहाँ खूब मुस्ता चहूँवा जमे हैं ।
वहाँ गाम छोटो कछू दूर पे हैं ॥ ४ ॥

अवाची दिसा तीर पै वृच्छ राजे ।
किते पुष्प-धारे किते पर्ण-साजे ॥
तहाँ भोर तें कोकिला-कीर बोलैं ।
सिखी मत्त ह्वै नाचि कै मंद डोलैं ॥ ५ ॥
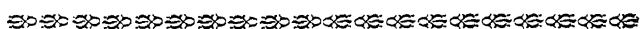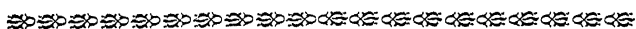
कपोतादि आनंद ते गीत गावैं ।
चिरी-कोकिलालाप काको न भावैं ॥
मलिंदावली गुंज मीठो सु लीनी ।
बयारी बहै मंद औ गंध-भीनी ॥ ६ ॥

अबै नैन ये ताल की ओर जावै ।
कहौं मैं छटा रम्य जो जो लखावै ॥
लसै मोहिनी कंज की मंजु राजी ।
सुबाला-मुखाली मनो नीर भ्राजी ॥ ७ ॥

कहूँ कंज पै बैठि कै भृंग बोलैं ।
मधूपान ते मत्त ह्वै व्योम डोलैं ॥
लसै पद्म पै षट्पदाली सु भीनी ।
मनो जाप के काज को माल लीनी ॥ ८ ॥

तऊ पद्मिनी पाद ना कांति पाई ।
रह्यो वक्त्र या तेहि मानो फुलाई ॥
तिन्हैं भृंग गुंजार तैं यों रिझावैं ।
वहीं त्यों रसास्वाद को दान पावैं ॥ ९ ॥
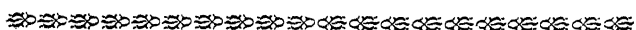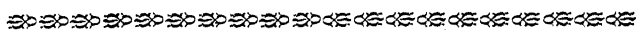
तुरी तेज जैसे कबौं पौन धावे।
कबौं मत्त मातंग मानो लजावे ॥
कबौं घाट ते दूरि लागैं सुबीची।
बढ़ावैं तहाँ दूब को खूब सींची ॥१०॥

उड़ैं बीच तें बारि की बूँद छोटी।
गिरैं नीर में फेरि वै जायँ लोटी ॥
तुलैं तुच्छ-सी देखि के माल मोती।
दिखैं हीन हीरान की हार-जोती ॥११॥

किती कंज के पत्र पै बूँद सोहैं।
महा मूल्य के रत्न की भान मोहैं ॥
जबै वायु के वेग ते पत्र डोलैं।
करै बारि नाना तबै यों कलोलैं ॥१२॥

कबौं गोल त्रैकोण आकार लेवैं।
कबौं लंब षट्कोन को रूप सेवैं ॥
सबै रूप में एक सोही सु सोहै।
अलंकार में हेम ज्यों चित्त मोहै ॥१३॥
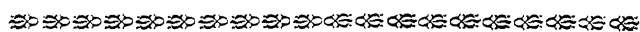
किती बुंदिका कंज की लालिमा पै ।
कवी-चित्त यों तुल्यता को सु थापै ॥
मनीलाल की भूमि मोती विराजे ।
मनोरक्त सी माँग पै रत्न भ्राजे ॥ १४ ॥

महा लोल ह्वै मत्स्य कल्लोल माचैं ।
कहूँ ढाल से गोल ये कच्छ नाचैं ॥
कहूँ छंद से नीर में ग्राह डोले ।
रहे ताक में खायबे जीव भोले ॥ १५ ॥

कहूँ कोल मुस्ता-जड़ें खोदि खावें ।
कहूँ तुंड ते लेय ढेले उड़ावें ॥
कहूँ भाल सी दंष्ट्र ते भूमि फारैं ।
मनों हाल ते छेत्र को चीरि डारैं ॥ १६ ॥

तहाँ कोल के वत्स ह्वै दूध-लोभी ।
चहें पान को मातु को रोंकि छोभी ॥
ससा स्यार जंतू करैं पान-चारी ।
पुनी लोटि जावैं हिये मोद भारी ॥ १७ ॥
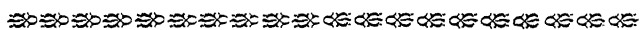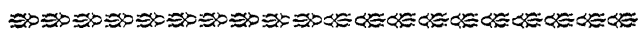
करैं मोद ते नाद ये नीर-पच्छी ।
कहूँ डोलते गिद्ध से मच्छ-मच्छी ॥
विहंगावली मोहनी मंजु बोलै ।
उड़ै ब्योम में संग ही संग डोलै ॥ १८॥

कितै घाट पे तान लै मंद गावैं ।
किते स्नान तें अंग की शुद्धि पावैं ॥
किते वस्त्र को धोय के घाम डारैं ।
किते पाँव को मोद तें जा पखारैं ॥ १९॥

किते वर्ण नाना सजे वस्त्र बैठे ।
किते वस्त्र को धोय ठाढ़े अमेठे ॥
किते देव के ध्यान में चित्त लावैं ।
मनो ब्रह्म में लीन योगी लखावैं ॥२०॥

भरै घाट पे नीर ये ग्राम-नारी ।
सजे चीर नाना महा चित्त-हारी ॥
कहूँ जा एकांत बाला नहावे ।
तहाँ साँझ-शृङ्गार आछो बनावे ॥२१॥
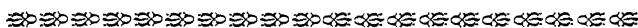
सनै भानु ज्यों दि्क प्रतीची सिधायो ।
सनै रम्य त्यों रक्तता-भास छायो ॥
फुरे यों रवी-तेज की मंदता ते ।
भई या छबी हीनता श्रांतता ते ॥२२॥

सनै तेज ने थान नीचे तजे ज्यों ।
शिखा बृच्छ औ उच्च भू पे लसे त्यों ॥
यहै तेज यों पूर उच्चाभिलासी ।
गयो छोरि स्वामी सुलोकान्यवासी ॥२३॥

रह्यो भानु को बिंब सोभा-विहीनो ।
छई लाज सो लोक ये त्याग दीनो ॥
बिहंगावली सोर ठाँ ठाँ मचायो ।
कहै बास के गौन को काल आयो ॥२४॥

कछू काल लों रम्य संध्या विकासी ।
कछू मोहनी रक्त आभा सु भासी ॥
कछू ताल के बारि लाली सुहाई ।
कछू रक्तिमा कंज के पत्र छाई ॥२५॥
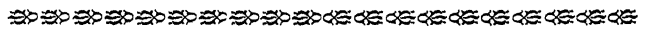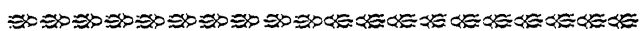
करैं विप्र संध्या समै को निहारी ।
भयो शंख-घंटान को नाद भारी ॥
पुजारी सबै आरती को उतारैं ।
वहाँ भक्त ठाढ़े स्तुती को उचारैं ॥२६॥

सनै ध्वांत ने वास एकांत त्याग्यो ।
सनै फैलिकै सो सबै ओर लाग्यो ॥
सनै दूरि की वस्तुयें मंद भासीं ।
सनै मंद ह्वै पास की हू प्रकासीं ॥२७॥

सबै ठौर यों ध्वांत ने राज पायो ।
उदै नीच को चंद को ना सुहायो ॥
उदै-शैल ते झाँकिबे रंच लाग्यो ।
लखे ध्वांत मित्रारि को क्रोध पाग्यो ॥२८॥

मनो वक्त्र पै यों ललाई सुछाई ।
उठ्यो और ऊँचे करों को बढ़ाई ॥
मनो चूर कर्पूर आकाश फैल्यो ।
दिशा पूर्व ते ध्वांत को पूर्व ठेल्यो ॥२९॥
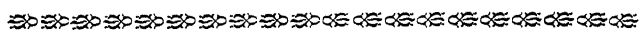
सनै चाँद की चाँदनी भू विकासी ।
सनै ध्वांत भो फेरि एकांतवासी ॥
निसानाथ देखो चकोरी हुलासी ।
न क्यों हर्ष ह्वै चंद्रिका-पान-प्यासी ॥३०॥

कुमोदावली फुल्लता पूर छाई ।
सबै मोद ह्वै कांत-संयोग पाई ॥
समै या वियोगी महा दुख पावैं ।
तिन्हैं चाँद औ चाँदनी नाहिं भावैं ॥३१॥

सबै ये कह्यो है अधूरो हि तौलौं ।
कहों ना छटा ताल की याहि जौलौं ॥
अनूठी छबी ताल की चंद्रिका ते ।
घनी मोहिनी या भई श्वेतता ते ॥३२॥

अहो ताल में व्योम-छाया निहारो ।
तहाँ तारिका चंद्र पै दीठि डारो ॥
छबी व्योम की ताल के बारि में यों ।
लह्यो बास वाने यहाँ आय के ज्यों ॥३३॥
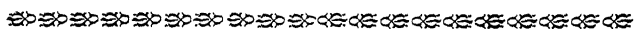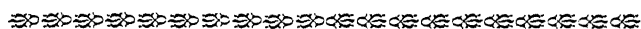
यहीं चंद्रमा पै बसी बास आजै।
यहीं तारिका ब्योम आ आ बिराजै॥
मनो मंजु भूमी मनी नील की पे।
बड़े और छोटे सु हीरे प्रदीपे॥३४॥

सितांभोज सोहे कलिंदी सु बारी।
तहाँ फूल औरै खिले श्वेत भारी॥
बयारी जबै मंद ही मंद धावै।
तबै ये सबै डोलते से लखावै॥३५॥

जबै मंद बायू जरा बेग धारे।
तबै नाच नाचैं यहाँ चाँद तारे॥
कही ये कछू जो लखी नैन जो जो।
कहों फेर आगे फुरे और सो सो॥३६॥

उदै काल औ अस्त में तुल्यता है।
दिखाऊँ यहाँ नेक यों चित्त चाहे॥
वही लालिमा ब्योम माहीं लखावे।
वही पंछि को नाद ठाँ ठाँ सुनावे॥३७॥
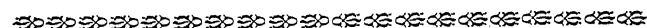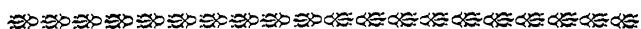
वही तेज की न्यूनता नैन भासे।
वही मंदता तारिका की प्रकासे॥
वही पद्म के पत्र पै लालिमा है।
वही ताल के बारि पै रक्तिमा है॥३८॥

वही चित्त में शांतता सी बिराजे।
वही देव के ध्यान को काल भ्राजे॥
वही शंख औ घंट को नाद छावे।
वही आरती देवता की सुहावे॥३९॥

उदैकाल औ अस्त में भेद जो जो।
बताऊँ यथा-बुद्धि मैं शोधि सो सो॥
किती साँझ आनंद-आभा दिखावे।
किती प्रात आमोद शोभा बढ़ावे॥४०॥

सँयोगी युवा साँझ माते हुलासै।
लखे प्रात को कोक को शोक नासै॥
प्रतीची दिशा साँझ लाली सुहावै।
छबी लालिमा पूर्व में प्रात पावै॥४१॥
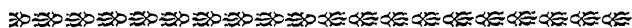
दिशा पूर्व में चंद्रमा साँझ सोहै ।
उदै भानु को भोर में चित्त मोहै ॥
कुमोदावली साँझ ज्योंहीं विकासै ।
सदा कंजिनी प्रात त्योंहीं हुलासै ॥४२॥

सनै साँझ तारा सु-शोभा बढ़ै ज्यों ।
सनै प्रात तारान की भा घटै त्यों ॥
घनो साँझ में शोर पंछी मचावैं ।
सबै जागि के मोद ते प्रात गावैं ॥४३॥

प्रतीची दिशा साँझ भानू अथावै ।
उतै प्रात सों ही दशा चंद्र पावै ॥
सबै ओर आ श्रांतता साँझ छावै ।
नवीनी प्रभा प्रात माहीं लखावै ॥४४॥

फुरयो साँझ औ प्रात में भेद मोही ।
दिखायो यहाँ मैं यथा-बुद्धि सोही ॥
दुहूँ काल में मोहनी ताल-शोभा ।
कही है यहाँ पे जबै पेखि जो भा ॥४५॥
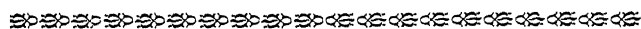
अनूठी छबी को कहौं मैं कहाँ लौं ।
अघावै नहीं नैन शोभा लखे ज्यौं ॥
कवी ने कही जो फुरी औ निहारी ।
थकी बानि तौहू छटा ताल न्यारी ॥ ४६ ॥

८—मन के प्रति

आपात सुन्दर-रसे विषयोपभोगे
भुक्ते चिरं तदपि ते सुरतिस्तथैव ।
शीघ्रं विमुञ्च विषयान् वितथान् मनो मे
सीतापतेर्विहर मंजु पदारविन्दे ॥ १ ॥

किं रे मनो नहि शृणोषि ममोपदेशं
नाद्यापि सीदति कथं विषयाभिलाषः ।
कुत्र त्वया चिरसुखं कथयोपलब्धम्
नोचैदतो वस सखे रघुनाथपादे ॥ २ ॥
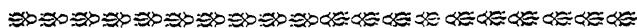
आरण्यरोदन मिदं हि मनो मदुक्तं
हा तन्निपातयति मां भवसागरेऽस्मिन् ।
त्राताऽत्र कोऽपि न विना रघुनंदनेन
तस्मादहं रघुपतिं शरणं व्रजामि ॥ ३ ॥

दुःखं ददाति खलु दुर्ललितं मनो मे,
नाद्यापि तेन विधृतः सुविनीतभावः ।
हे राम ! राघव ! मदोद्धतनम्रकारिन् !
त्वत्पादचुंबनपरं कुरु तत्प्रमत्तम् ॥ ४ ॥

वृद्धं यथैव जनकं ह्यसहायमीक्ष्य
पुत्रः खलः किल दुनोति तथा मनो मे ।
तन्निर्भयं त्वशरणं मनुते कथं माम्
हे विश्वरूप ! भगवन् ! त्वयि विद्यमाने ॥ ५ ॥

संतापितो निजजनैर्निरुपाय एष
संयाति प्राकृत नृपं शरणं हि लोकः ।
स्वामिन् कथं स्वमनसा परिपीडितोऽहम्
त्वत्पादमूलमनिशं शरणं न यामि ॥ ६ ॥
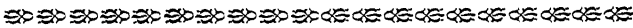
आर्ताय नाथ कृपया शरणागताय
भ्रात्रे त्वया निजरिपोरभयंप्रदत्तं ।
किं त्वज्जनस्य तनयाय पदे गताय
संतापिताय मनसो ह्यभयं न देयम् ॥ ७ ॥

"बंधूरिपोरपि सदा मदनन्यभक्तः
इत्थं त्वया प्रलपितं तु कथं विमूढ़" !
सत्यं प्रभो ! मम कुतोहि विवेकबुद्धिः
क्षंतव्य आर्तिहर ! कृच्छ्रगतप्रलापः ॥ ८ ॥

ज्ञातं प्रभो खलु बिना त्वदनन्यभक्तिं
किं प्राप्यते शरणता पदपंकजस्य ।
तारस्वरेण कथयन्ति पुराणग्रन्थाः
त्वन्नामकीर्तनपरेण तु सैव लभ्या ॥ ९ ॥

त्वन्नामसाररसिकाः कथयन्ति भक्ताः
पोतो भवाब्धितरणे भवदीय नाम ।
ये चैव नामजपने शिथिलप्रयत्नाः
ते निश्चयेन भगवन् ! भुवि मंदभाग्याः ॥ १० ॥
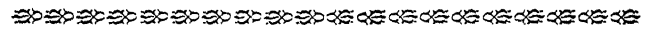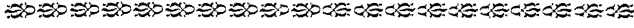
कर्मागतं भवतु मे हि सुखं च दुःख
 मायाति कापि हृदये न भविष्यचिन्ता ।
एकस्तथापि भगवन् ! परमाभिलाषः
 त्वन्नामविस्मृतिपथं न कदापि यातु ॥११॥

समाप्त
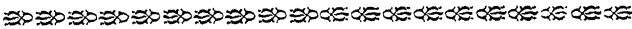
मोहन-विनोद

(परिशिष्ट)

छंदों का आदि भाग	(छन्द)	पृष्ठ

अ

आ

इ

उ

ए

ऐ

ओ

औ

अं

क

ख

ग

घ

च

छ

ज

झ

ड

त

द

ध

न

प

भ

म

य

र

ल

व

स

ह्

क्ष

ज्ञ